# मणिपुर:

# विविध सन्दर्भ

प्रधान सम्पादक :

देवराज

हिन्दी परिषद्, मणिपुर वि.. द्यालय, कांचीपुर, इम्फाल

डॉ० भूषणलाल कौल

के

लिए

स-सम्मान

देवराज

६ जुलाई १९८९

# मणिपुर : विविध सन्दर्भ

सम्पादक:
डॉ० जगमल सिंह
डॉ० इबोहल सिंह काङजम

संयोजन :
विनोद कुमार शर्मा
प्रदीप प्रसाद साहु
वाइ० बाबू सिंह

प्रधान सम्पादक :
देवराज

हिन्दी परिषद्, हिन्दी विभाग,
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल

# मणिपुर : विविध सन्दर्भ

प्रकाशक :
हिन्दी परिषद्
हिन्दी-विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय
कांचीपुर-७९५००३
इम्फाल (मणिपुर)



आवरण-संकल्पना :
देवराज/इबोहल

संस्करण : प्रथम, १९८८
मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक : माडर्न प्रेस,
गांधी एवेन्यू, इम्फाल-७९५००१
फोन : २१४५३

उन

तमाम पीढ़ियों

के नाम

जिन्हों ने

संस्कृति की मशाल

को

जलाए रखा

UNIVERSITY OF MANIPUR
CANCHIPUR, IMPHAL 795003
MANIPUR, INDIA

VICE-CHANCELLOR

January 05-1988

I am glad to learn that the Hindi Parishad will soon bring out a collection of Essays on the culture and civilization of Manipur. Though I have not gone through the manuscript, I can well imagine that the book will be quite informative, thought provoking and useful. At present the question relating to identity is being discussed in national as well as international circles. Since the contributors of the book are well known scholars, it is expected that they will give an objective account of the traditions and customs, of the values, the way of living of the people of Manipur. It is hoped that the book will enable its readers to have a better understanding of Manipuri culture.

I wish the book all success.

Sd/-
KJ Mahale

प्रो० आइ० आर० बाबू सिंह
अधिष्ठाता
कला संकाय
मणिपुर विश्वविद्यालय

सन्देश

दिसम्बर २२, १९८७

मणिपुर की संस्कृति और जीवन का परिचय देने वाली पुस्तक के प्रकाशन पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

यद्यपि मणिपुर अपनी परम्पराओं और अनेक अन्य दृष्टियों से समृद्ध है किन्तु दूसरी भाषाओं में तत्सम्बन्धी अत्यल्प सामग्री ही उपलब्ध है। 'मणिपुर : विविध सन्दर्भ' ऐसी पुस्तक होगी, जिसमें हिन्दी भाषी लोगों को मणिपुरी जाति की संस्कृति के सम्बन्ध में उपयोगी और महत्वपूर्ण जानकारी मिलेगी।

मैं प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

ह०
( प्रो० आइ० आर० बाबू सिंह )

डॉ० देवराज
सम्पादक
मणिपुर : विविध सन्दर्भ
हिन्दी विभाग

# प्रारम्भिकी

मणिपुरी संस्कृति का मूल चरित्र मिथकीय है। सृष्टि की उत्पत्ति, समाज के ढाँचे का गठन, धर्म का स्वरूप, देवी-देवता, पर्व-त्योहार, समूह-उत्सव, जन्म से लेकर मृत्यु तक के विधि संस्कार, पूजा-पाठ यहाँ तक कि दैनिक-व्यवहार तक किसी न किसी मिथकीय-संघटना से अनुशासित होते हैं। यही कारण है कि यह समाज आज तक संस्कृति को जीता-भोगता दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि कोई समाज संस्कृति को जीना कभी बन्द कर सकता है। प्रत्येक समाज प्रत्येक क्षण अपनी संस्कृति को ही जीता है। उसकी प्रत्येक साँस संस्कृति की ओषजन से जीवित रहती है। इस क्रम को कभी रोका नहीं जा सकता। रोकने का अथ होगा— समाज की मृत्यु। तब फिर वह क्या है, जिसके कारण मैंने कहा कि मणिपुरी समाज संस्कृति को जीता दिखता है। वस्तुत: एक तत्व ऐसा है, जिसने मुझे ऐसा कहने को बाध्य किया। वह तत्व है, संस्कृति को इस प्रकार जीने की लालसा कि जीने वाले को लगातार इस बात की अनुभूति होती रहे कि वह क्या जी रहा है केवल अनुभूति ही नहीं, बल्कि यह चेतना बनी रहे कि जो कुछ जिया जा रहा है, वह वही है, जो व्यक्ति को उसकी जड़ों के सीधे सम्पर्क में रखे हुए है। यदि कोई दूसरा तत्व व्यक्ति को किसी अलग पथ की ओर ले जाने की चेष्टा करता है तो चेतना में ऐसी झनझनाहट पैदा होती है कि मनुष्य भीतर से बाहर तक सिहर उठता है और अपने प्रति पहले से भी अधिक सचेत हो जाता है। यह झनझनाहट व्यक्ति को उस चेतना-शिखर पर खड़ा कर देती है, जहाँ से वह जीवन को इस और उस दोनों ओर दूर तक देख सकता है। यही वह शिखर भी होता है, जहाँ से

व्यक्ति अपने जीवन के पथ में परिवर्तन कर सकता है। इतना ही नहीं, शिखर से उत्तर कर वह अपने यात्रा-पथ का निर्धारण पिछले यात्रा-पथ को ध्यान में रखकर कर सकता है। एक-दम भिन्न ( या विपरीत ) पथ का अनुसरण करने को संभावनाएँ यहाँ धूमिल पड़ जाती हैं। यदि थोड़ा ध्यान दें तो यह स्थिति मनुष्य और समाज दोनों को उनकी परम्परा से जोड़ती है। ऐसे समाज परम्परा में से परम्परा का विकास करते है। आगे बढ़ते रहते है। नयी परम्परा गढ़ते और जीते रहते हैं। जीवन में परिवर्तन पैदा करते रहते हैं। नयी उपलब्धियाँ पाने को संकल्प- बद्ध रहते हैं। किन्तु ऐसे समाज कभी तूफान का शिकार नहीं होते। कभी अन्धी दौड़ नहीं दौड़ते। कभी अपने को भूलते नहीं। इसीलिए ऐसे समाज कभी परतन्त्र नहीं होते। कोई उन पर अधिकार कर लेता है तो अगले ही पल वे उसे धूल चटा देते हैं और मस्त चाल से आगे बढ़ जाते हैं।

मणिपुर के इतिहास से मेरी बात पुष्ट हो जाती है। आदि-शक्ति 'गुरु शिदब' की इच्छा से मनुष्यों की उत्पत्ति हुई और सामान्य इच्छा का निर्माण होने पर समाज बना। इस समाज ने राज्य-संस्था को स्वीकार किया तथा विकास की दिशा में बढ़ने लगा जैसे-जैसे समय व्यतीत हुआ, पाखङबा, सनामही, पान्थोइबी, नोङपोक निङथौ आदि बहुत सारे देवता मणिपुरी जीवन के साथ जुड़ते गए। समाज कुछ और आगे बढ़ा तो खम्ब और थोइबी जैसे लोक-नायकों ने सांस्कृतिक समृद्धि के नए शिखरों का निर्माण किया। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुरु शिदब से जो परम्परा जन्मी वह खम्ब-थोइबी तक आते-आते अनेक सघन-विरल माध्यमों के भीतर से होकर गुजरी। एक ओर गुरु शिदब के काल का सघन, शास्त्रोक्त, अनुशासित माध्यम रहा तो दूसरी ओर खम्ब-थोइबी के काल का विरल, स्वच्छन्द और उन्मुक्त माध्यम। किन्तु इस सुदीर्घ

यात्रा-पथ में मणिपुरी समाज एक बार भी तूफान का शिकार होकर अपनी गति नहीं भूला, न कभी इधर-उधर भटका। प्रशान्त धारा की भाँति यह समाज अपनी संस्कृति के साथ प्रवाहमान रहा। यह कितना बड़ा आश्चर्य है कि धोर-प्रशान्त रूप में बहते हुए भी इसे कभी नींद ने घेरा नहीं; अतः इसे कोई बन्दी नहीं बना सका। जब वैष्णव मत के प्रचारक शान्तिदास गोसाई ने मणिपुर की मूल संस्कृति की प्रकृति को पहचाने बिना उसे अपनी विचारधारा की चादर में बलात् लपेट लेना चाहा और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'महाराजा गरीबनिवाज' को अपने मत में दीक्षित कर, वैष्णव मत को राज-धर्म घोषित करवाने में सफलता प्राप्त करके प्राचीन पुराण-ग्रन्थों को जलवाने का दुस्साहस किया तो यहाँ की साधारण जनता ने ऐसा तेवर अपनाया कि शान्तिदास को प्राण-रक्षा करना कठिन हो गया। वही वैष्णव मत जब सांस्कृतिक-समन्वय, औदार्य, सारल्य और आत्मीयता का भावात्मक-दीप जलाकर आया तो मणिपुर की उसी जनता ने उसे कण्ठ-हार का सम्मान देने में तनिक भी कृपणता प्रदर्शित नहीं की। उस समय महाराजा भाग्यचन्द्र की पुत्री राधिका की भूमिका में उतरी और यह धरा कृष्णमय हो उठी। विद्यापति के पद ब्रजबुलि बन कर कृष्ण मन्दिरों में कीर्तन के रूप में गूंजने लगे और वैष्णव चेतना से नहाकर मणिपुर टटका हो गया। बात यहीं पर नहीं रुकी। संस्कृति विश्लेषकों ने इस वैष्णव-चेतना को मणिपुरी संस्कृति के आदि स्रोत तक फैला हुआ पाया। इस बिन्दु पर कुछ नए मिथक विकसित हुए और मणिपुरी संस्कृति का अंग बन गए। देवी-देवताओं की नवीन-नवीन प्रतीक-व्याख्या होने लगी। यह अद्भुत-मिलन मूल परम्परा को मिटा कर, नवीन की अधिकार-स्थापना की भूमि पर, नहीं मूल

की पहचान को बनाए रख कर, नवीन के स्वाभाविक विकास की भूमि पर, जन्मा। परिणाम स्वरूप संस्कृति के कल्प-वृक्ष की जड़ें वही रहीं, पुष्प का रंग अधिक चमकीला, अधिक गहरा, अधिक सजीव हो गया। इतना सजीव कि आज तक मणिपुरी-समाज उसकी अनुभूति से भीग रहा है।

सभ्यता की चकाचौंध से आक्रान्त दूसरे समाजों में यह देखने को नहीं मिलता। विज्ञान और औद्योगीकरण की छाया में जो समाज जी रहे हैं, वे आत्म-विस्मृति का शिकार हो गए हैं। उन्होंने वैज्ञानिक-शोध, अन्वेषण, उत्पादन, मशीनीकरण, आयात-निर्यात और मूल्य-निर्धारण आदि विद्याओं में अपराजित-कुशलता प्राप्त करके जीवन और जगत् पर विजय प्राप्त की है। उनके लिए दिक्-काल की सीमाएँ शून्य महत्व की हो गयी हैं। उनके पास बड़े से बड़े अजगर को कील कर वश में करने के मन्त्र, आदेश की प्रतीक्षा में हाथ बांधे खड़े रहते हैं। बड़े से बड़ा सुख उनसे आस्वाद का निवेदन करने में अहो-भाग्य समझता है। किन्तु इन समाजों ने यह सब अपनी नसों के रस को विक्रय करके पाया है। नसों का यह रस इनके पास प्राचीन ऋषि-मुनियों के आशीर्वाद और सहस्राब्दियों की साधना के फल-स्वरूप एकत्र हुआ था। इन्होंने उसे एक क्षण में खो दिया। इसीलिए युद्ध इनके लिए व्यापार और मनोरंजन का साधन रह गया। मानवता इनके शब्द-कोश में बुद्धिहीनता और कल्पित आदर्श का दार्शनिक नाम भर रह गयी। स्वतन्त्रता को इन्होंने एक राजनीतिक शब्द बनाकर उसका गला दबा दिया और मनुष्य की भूमिका खिलौने से अधिक नहीं रही। परिणाम सामने है, ये समाज अपनी जमीन से कट गए। इनके पास आत्मीयता नाम की वस्तु नहीं है। अपरिचय के दुर्दान्त बोध ने इनकी

निश्चयात्मिका-बुद्धि को ढक लिया है। अपनी ही भूल से ये तूफान के शिकार हो गए। अन्धी दौड़ में लगातार दौड़ना इनकी नियति बन गयी। अब ये समाज अपनी परम्परागत संस्कृति को तो भूल ही चुके है; जिस कृत्रिम संस्कृति को इन्होंने जन्म दिया है, उसके स्वरूप की सही जानकारी भी इन्हें नहीं है। ये आत्म-विस्मृति की अवस्था में जी रहे हैं। बस जी भर रहे हैं क्या जी रहे हैं, इन्हें नहीं पता। एक बिन्दु पर पहुँच कर दूसरे बिन्दु की ओर बढ़ जाते हैं दूसरे पर पहुँच कर तीसरे बिन्दु की ओर बढ़ जाते हैं तीसरे पर पहुँच कर चौथे की ओर। इनके लिए कोई बिन्दु ऐसा शिखर नहीं बन सकता, जिससे ये अपनी सही स्थिति का अनुमान करके भविष्य के पथ का निश्चय कर सकें। यही कारण है कि ये समाज किसी संस्कृति विशेष को जीते हुए नहीं दिखते। इनकी तुलना में परम्परागत जीवन-मूल्यों पर आस्था रखने वाला मणिपुरी समाज संस्कृति को एक जीवन्त भाव-चेतना के साथ जीता-भोगता दिखाई देता है।

परिस्थितियों के प्रभाव से इस समाज में भी परिवर्तन आ रहा है। मुख्य परिवर्तन धार्मिक-मूल्यों के क्षेत्र में दिखाई दे रहा है। पाश्चात्य शिक्षा, साम्यवाद और इसाईयत के प्रभाव से परम्परागत धार्मिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है और नयी पीढ़ी के मन में तर्क-बुद्धिवाद घर कर रहा है। ऐसे में यदि कुछ लोग ईश्वर और देवी-देवताओं के प्रति अनास्था भी रखने लगे हों तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। पाश्चात्य शिक्षा और बाहरी दुनिया से सम्पर्क के कारण सामाजिक-उत्सवों का स्वरूप भी किंचित प्रभावित हुआ है। इसी के साथ आर्थिक संरचना और नैतिक-मूल्यों की स्थिति बदली है। फिल्म और दूरदर्शन आदि ने आधुनिक जीवन मूल्यों और आधुनिकता का प्रसार किया है।

किन्तु यह सम्पूर्ण परिवर्तन चौंकाने वाली तीव्रता से नहीं हो रहा है। इसका एक कारण तो यही है कि मणिपुरी-समाज अभी तक औद्योगीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजरा है। अतः पूंजीवाद का दूसरे समाजों जैसा प्रभाव यहाँ नहीं पहुँच सका है। अभी यह महाजनी, ठेकेदारी और थोड़े से पूंजीवादी तन्त्र के मिले-जुले प्रभाव का सामना कर रहा है। इसका दूसरा कारण ऐतिहासिक है। मणिपुर लम्बे समय तक त्रिपुरा, चीन और बर्मा के साथ युद्ध मे उलझा रहा है। युद्ध में हार और जीत का लम्बा इतिहास मणिपुर के हिस्से में आया है। यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगा कि जो समाज युद्ध के जितने दुःखों का सामना करता है, वह अपनी पहचान के प्रति उतना ही सजग और आग्रहशील होता है। निस्सन्देह यह भाव प्रत्येक मणिपुरी व्यक्ति में हमेशा के लिए रच बस गया है। यही कारण है कि धन और पद की ऊँची-ऊँची कुर्सियों पर बैठे हुए मणिपुरी व्यक्ति आज भी सामाजिक-धार्मिक उत्सवों या संस्कारों में प्राचीन परम्परा का पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं। वे उन अवसरों के लिए निर्धारित पोशाक भी आस्था के साथ धारण करते हैं। मणिपुरी-समाज भारतवर्ष के सर्वाधिक पठन-प्रिय समाजों में से एक है। नए फैशन के साथ नयी विचार धाराएँ यहाँ देश के अन्य भागों की अपेक्षा जल्दी पहुँच जाती हैं। इसी के चलते शनैः शनैः राजनैतिक उठा-पटक भी बढ़ती जा रही है और जनता की चेतना राजनीतिक-जागरण से सम्पन्न हो रही है। लम्बे समय तक शोषण का शिकार रहने के बावजूद यहाँ की नारियों में पनपी सामाजिक राजनैतिक चेतना अत्यन्त प्रखर रूप ग्रहण करती जा रही है। इस सबके बाद भी नारी और पुरुष, दोनों के भीतर प्राचीन के सम्मान का भाव बराबर बना हुआ है। नृत्य हो या विवाह-पद्धति-सभी में

परम्परागत से लगाव साफ देखा जा सकता है। भाषा, लिपि, साहित्य और इतिहास के प्रति एक-दम नवीन जागरण इस समाज में उभर रहा है।

यह समय, समाज और संस्कृति के साधकों-सेवियों के लिए, सबसे अधिक सावधान होने का है। कारण, कि यह काल-खण्ड प्राचीन से नवीन की ओर बढ़ने का बिन्दु बन गया है। जिन समाजों में यह बिन्दु एक-दम नयी यात्रा का प्रस्थान बिन्दु बन जाता है, वे अपने इतिहास से कट कर जीने लगते हैं। ऐसे समाज एक-दम अकिंचन बन जाते हैं। उनके सामने मूल्य-बोध पर आधारित कोई लक्ष्य नहीं रहता। उन्हें एक दिन दासता घेर लेती है। फिर वे यदि स्वतन्त्र भी होते हैं तो मानसिक-युक्ति के दर्शन नहीं कर पाते। ऐसे समाजों के पास सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए कुछ नहीं रहता। वे, जो भी मिलता है, उसे ओढ़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इनका मृत्यु भयावह होती है। मणिपुरी समाज के साथ यह नहीं घटना चाहिए। इसीलिए हम सबको चौकन्ना हो जाना चाहिए। मणि के समान इस स्वर्गिक भूमि में लाइहराओबा, थाबल–चोङबा और खम्ब-थोइबी जैसे नृत्य फले-फूले हैं। रास, नट-संकीर्तन और लोक-गाथाओं ने इसे अपनी सुगन्ध से भरा है। यह धरती स्वतन्त्रता समानता, वीरता, प्रेम और प्राकृतिक-सुषमा से गौरवान्वित रही है। ये सब मणिपुर की संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। नवीन जीवन-मूल्यों को स्वीकार करते समय इस सम्पत्ति को भूलना समाज के लिए घातक होगा। तब यह समाज अपनी मूल पहचान से कट कर किसी अन्धे मार्ग को पकड़ लेगा और छटपटाता रहेगा। अतः परिवर्तन के इस युग में समाज की जीवन-यात्रा को ठोस आधारों पर तय करना है। यह तभी होगा, जब

संस्कृति के, प्राचीन से लेकर अब तक के, मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में यात्रा के नए आयाम तय किए जायेंगे अखण्ड संस्कृति ही अखण्ड समाज का निर्माण करेगी। सच्ची प्रगतिशीलता भी इसी अखण्ड संस्कृति के भीतर से जन्मेगी। क्योंकि अखण्ड हमें विकासमान बनाएगा, अपने भीतर झाँकना और आत्मालोचन करना सिखाएगा। सबसे अधिक वह हमें सहायक और अवरोधक की पहचान करके सही चुनाव का विवेक प्रदान करेगा। तब हम आत्म-हीनता का शिकार होकर विनाश की ओर नहीं बढ़ेंगे, आत्म-गौरव के बोध से भर कर नए जीवन का निर्माण करेंगे।

'मणिपुर : विविध सन्दर्भ' के प्रस्तुति करण के पीछे हमारी यही भावना है हम चाहते हैं कि हमारी नयी पीढ़ी अपनी उस महान सांस्कृतिक विरासत के विषय में जाने, जिसे न जान कर वह बाहरी दबावों के बीच अपने अस्तित्व की रूप-रेखा ही खो देगी।

मणिपुरी संस्कृति को हिन्दी में प्रस्तुत करने का यह प्रथम बड़ा और व्यवस्थित प्रयास है। इससे पूर्व श्री एस० गोपेन्द्र शर्मा ने 'मणिपुरी संस्कृति : एक झाँकी' शीर्षक पुस्तक लिख कर इस दिशा में अच्छा कार्य किया है यह पुस्तक अपनी सीमाओं के भीतर मणिपुरी संस्कृति के धार्मिक और कुछ सामाजिक पक्ष का परिचय देती है। मणिपुर : विविध संन्दर्भ में आपको विस्तार से विविध पक्षों की जानकारी मिलेगी। यह सारी जानकारी प्राचीन ग्रन्थों, सर्वेक्षण, विद्वानों से बार-बार के साक्षात्कार और विश्लेषण पर आधारित है। मणिपुरी भाषा से सम्बन्धित लेखों से जहाँ संस्कृति के एक पक्ष की प्रस्तुति हुई हैं वहीं एक नया मत भी सामने आया है। भाषा-वैज्ञानिकों के लिए ये नया मत

चुनौती का कार्य कर सकता है। मणिपुर के दर्शनीय स्थलों की जानकारी पर्यटन की दृष्टि से उपयोगी है। इन स्थलों के सांस्कृतिक महत्व को तो नकारा ही नहीं जा सकता।

एक संकेत अपनी अक्षमता की ओर भी करूँगा :—
(अ) पृष्ठ-संख्या की दृष्टि से लेखों के बीच पाठकों को खटकने वाला वैषम्य अनुभव हो सकता है। सम्पादन की कमी तो यह है ही।
(ब) मुद्रण की अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। कोशिश करके भी मैं प्रूफ ढंग से नहीं पढ़ पाया और मुद्रक की बात मान कर उन्हीं पर प्रूफ पढ़ने का काम मैंने छोड़ा नहीं। इन अक्षमताओं को मैं पूरी निष्ठा से अपने ऊपर ओढ़ता हूँ और भविष्य में सुधारने का विश्वास दिलाता हूँ।

हिन्दी-परिषद् के हित-चिंतक प्रिय भाई शैलेन्द्र के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। उन्हीं के परिश्रम से यह सामग्री समय पर प्रकाशित हो सकी है।

१ जनवरी, १९८८ देवराज
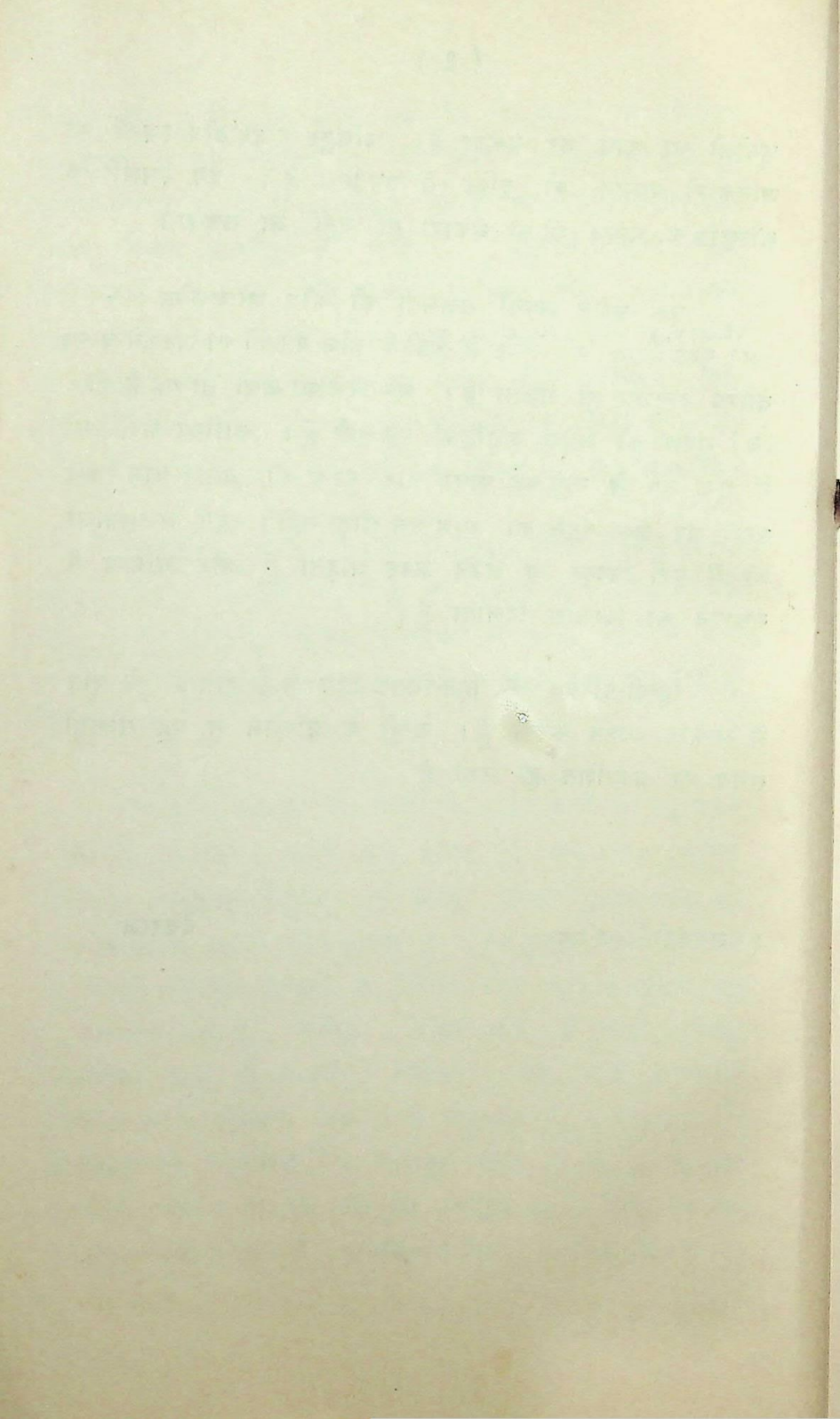
## हिन्दी-विभाग से हिन्दी परिषद् तक-----

मणिपुर विश्व-विद्यालय की स्थापना से पूर्व यहाँ जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय, दिल्ली द्वारा स्थापित 'स्नातकोत्तर अध्ययन केन्द्र' कार्य कर रहा था। इसी केन्द्र के तत्वावधान में सन् १९७९ में हिन्दी-विभाग प्रारम्भ किया गया। विभाग का संचालन करने के लिए डा० देवदत्त कौशिक ( एसोसिएट प्रोफेसर ) और श्री उदय प्रकाश सिंह (एसिस्टैण्ट प्रोफेसर) की नियुक्ति की गयी किन्तु दोनों व्यक्ति विभाग से अधिक दिन नहीं जुड़ सके और १९८० में त्याग पत्र देकर चले गए। इसी वर्ष डा० एस० तोम्बा सिंह ने विभाग का कार्य संभाला तथा डॉ० जगमल सिंह अंशकालीन-प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुए। कार्य की अधिकता को देखते हुए मणिपुरी भाषा एवं साहित्य विभाग के हिन्दी-प्रेमी डॉ० ई० दीनमणि सिंह ने अपनी स्वैच्छिक-निःशुल्क अध्यापन सेवाएँ इस विभाग को समर्पित कीं।

१ अप्रैल १९८१ को ज० ने० वि० वि० के इस स्नातकोत्तर अध्ययन केन्द्र को मणिपुर विश्व-विद्यालय का हस्तान्तरण कर दिया गया। उसी दिन से हिन्दी-विभाग भी अन्य विभागों के साथ विश्व-विद्यालय के एक विभाग के रूप में कार्य करने लगा। सन् १९८१ से डॉ० एस० तोम्बा सिंह विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे। १९ जुलाई १९८२ को श्री लम्बोदर झा विभाग के नए सदस्य के रूप आए। कुछ समय बाद अंशकालीन अध्यापकों की संख्या में वृद्धि हुई। डॉ० के० २बोहल सिंह, डा० मार्कण्डे राय, डॉ० जवाहर सिंह और श्री महेशप्रसाद सिन्हा अंशकालीन सदस्यों के रूप में विभाग से जुड़े। जनवरी १९८४ में श्री लम्बोदर झा को विभागाध्यक्ष बनाया गया। इसी वर्ष डा० जवाहर सिंह और

डॉ० जगमल सिंह की नियुक्ति एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में हुई तथा डा० जवाहर सिंह नए विभागाध्यक्ष बने । सन् १९८५ का वर्ष हिन्दी विभाग के लिए विशेष महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष प्राचीन और मध्य-कालीन कविता तथा असमीया भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ डा० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' (७ फरवरी), हिन्दी में नवीनतम काव्यान्दोलन 'तेवरी' के जनक डा० देवराज (८ फरवरी), डा० इबोहल सिंह काङजम तथा हजारीमयुम सुवदनी देवी ने (जुलाई माह में) कार्यभार संभाला। इनमें डा० मागध प्रोफेसर, डा० देवराज एवं डा० इबोहल सिंह एसिस्टैण्ट प्रोफेसर तथा कु० सुवदनी देवी रिसर्च एसोसिएट के रूप में आए। यह रपट लिखते समय श्री लम्बोदर झा शोध-उपाधि प्राप्त करके मैरिट प्रमोशन योजना के अन्तर्गत एसोसिएट प्रोफेसर बन चुके हैं और सुवदनी देवी एसिस्टैण्ट प्रोफेसर बन गयी हैं ।

मणिपुर विश्वविद्यालय का हिन्दी-विभाग अपनी रचनात्मक भूमिका का भली प्रकार निर्वाह कर रहा है। इस रचनात्मक भूमिका के विभिन्न पक्ष हैं :

(१) हिन्दी भाषा एवं साहित्य का अध्यापन
(२) साहित्य एवं भाषा-विज्ञान सम्बन्धी शोध
(३) संगोष्ठियों एवं अध्ययन यात्राओं का आयोजन
(४) मणिपुर की संस्कृति, साहित्य, लोक-जीवन एवं इतिहास का हिन्दी में प्रकाशन
(५) अनुवाद

हिन्दी-विभाग हिन्दी एवं मणिपुरी दोनों भाषाओं के बीच संवाद-सेतु का कार्य कर रहा है। इस कार्य के लिए मणिपुरी-हिन्दी अनुवाद योजना का संचालन विभाग का महत्वपूर्ण कदम है। इसके अन्तर्गत मणिपुरी भाषा के ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद के

साथ 'रामचरितमानस के मणिपुरी अनुवाद का कार्य उल्लेखनीय है। इसके साथ ही विभाग के अध्यापक सदस्य अपने-अपने स्तर पर मणिपुर की संस्कृति एवं साहित्य के सम्बन्ध में कार्य करते रहते हैं। वर्तमान विभागाध्यक्ष डा० जवाहर सिंह समय-समय पर मणिपुरी संस्कृति एवं समाज सम्बन्धी लेखन करते तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते रहते हैं। डा० जगमल सिंह प्रसिद्ध लोक साहित्य विज्ञानी हैं। वे मणिपुर के लोक-जीवन एवं संस्कृति पर गम्भीर शोध-कार्य कर रहे हैं। उन्होंने समाचार-पत्रों में लेख प्रकाशित कराने के साथ ही मणिपुरी संस्कृति पर पुस्तक भी तैयार की है। मणिपुरी लोक-कथाओं को भी डा० सिंह ने संग्रहीत किया है। डा० देवराज ने सर्वप्रथम मणिपुर में हिन्दी विषयक शोध-कार्य किया। उन्होंने यहाँ की हिन्दी संस्थाओं से जुड़ कर हिन्दी-प्रचार को नयी गति दी है। साथ ही वे मणिपुरी भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी संस्थाओं से भी जुड़े हैं। उन्होंने डा० इबोहल सिंह काङ्जम के साथ मीतैचनु नामक पुस्तक का सम्पादन-प्रकाशन किया है, जिसमें मणिपुरी भाषी हिन्दी कवियों की हिन्दी कविताओं को मणिपुरी अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया है। डा० देवराज ने ही इस प्रदेश में हिन्दी कवि सम्मेलन की परम्परा प्रारम्भ की है। उनसे पहले केवल एक कवि सम्मेलन डा० जगमल सिंह द्वारा किया गया था। मणिपुर पर केन्द्रित प्रस्तुत पुस्तक भी डा० देवराज, डा० जगमल सिंह एवं डा० इबोहल सिंह काङ्जम के प्रयास का ही परिणाम है। डा० लम्बोदर झा, डा० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' एवं ह० सुवदनी देवी भी हिन्दी एवं मणिपुरी भाषा-साहित्य के लिए कार्य कर रहे हैं। हिन्दी विभाग का यह कार्य निश्चय ही राष्ट्रीय महत्व रखता है।

हिन्दी-विभाग के अन्तर्गत किए गए शोध एवं अनुवाद कार्य का विवरण इस प्रकार है :

(अ) पी एच० डी० हेतु सम्पन्न शोध कार्य—

| | विषय | शोधार्थी | निर्देशक | वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| १। | हिन्दी और नेपाली भाषा की व्याकरणिक कोटियों का तुलनात्मक अध्ययन | डा० चन्द्रेश्वर दुबे | डा० एस० तोम्बा सिंह | १९८५ |
| २। | पश्चिम बंगाल में मैथिली की विभाषा खुट्टा का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन | डा० लम्बोदर झा | डा० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' | १९८६ |
| ३। | राजस्थानी और हरियाणी लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन | डा० श्यामलाल | डा० जगमल सिंह | १९८६ |
| ४। | ग्वालपाड़ा जिले का मनसा काव्य : पाठ सम्पादन और अनुशीलन | डा० अनन्तकुमार नाथ | डा० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' | १९८६ |
| ५। | वज्जिका और असमीया संस्कार गीतों का तुलनात्मक अध्ययन | डा० मथुरा प्रसाद शर्मा | ,, | १९८७ |
| ६। | हिमांशु जोशी के आंचलिक कथा सहित्य में सम सामयिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति | डा० अरुण प्रकाश ढौंडियाल | डा० जगमल सिंह | १९८७ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७। आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन के उपन्यासों का अध्ययन | डा० हीरालाल-गुप्त | डा० जवाहर सिंह | १९८७ |

(ब) शोध हेतु स्वीकृत विषय—

१। मणिपुरी कोशों का उद्भव और विकास
२। हिन्दी और मणिपुरी की वाक्य-संरचना का तुलनात्मक अध्ययन
३। महाराजकुमारी विनोदिनी देवी एवं मृणाल पाण्डेय के कथा और नाटक साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
४। मागधी और असमीया लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन
५। रामायणी कथा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन
६। राम रसायन और रामरस लहरी का तुलनात्मक अध्ययन
७। रामकथा और सप्तकाण्डेतर रामायण का तुलनात्मक अध्ययन
८। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का शिल्प
९। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-बंगला कविता का तुलनात्मक अध्ययन
१०। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में मध्य वर्ग
११। नागार्जुन व्यक्ति और विचारधारा
१२। हिन्दी के प्रकृतिवादी उपन्यास
१३। राजस्थान और ब्रज के लोक-गीतों का तुलनात्मक अध्ययन
१४। हिन्दी और मणिपुरी लोक गाथाओं में कथानक रूढ़ियाँ
१५। राजस्थानी और नेपाली लोक-गीतों का तुलनात्मक अध्ययन
१६। गाजीपुर जिले का मौखिक साहित्य
१७। सन् उन्नीस सौ सत्तर के पश्चात की हिन्दी कविता का अनुशीलन
१८। शिवप्रसाद सिंह का कथा साहित्य

२०। ब्रजबुली गीति-काव्य के परिप्रेक्ष्य में मणिपुरी गीति-काव्य का अनुशीलन

२१। हिन्दी एवं मणिपुरी नाट्य साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

२२। हिन्दी और मणिपुरी के प्रत्ययों का तुलनात्मक अध्ययन

२३। हिन्दी और मणिपुरी लोकोक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

२४। मणिपुरी भाषा में हिन्दी के आगत शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

२५। हरिकृष्ण प्रेमी एवं उदयशंकर भट्ट के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन

२६। भोजपुरी लोक-गीतों का अध्ययन

(स) एम० ए० के छात्रों द्वारा सम्पन्न अनुवाद कार्य —

| | पुस्तक का नाम | भाषा से | भाषा में |
|---|---|---|---|
| १। | अनुराधापुर आश्रमगी राजकुमार | मणिपुरी — | हिन्दी |
| २। | अनौबा अयुक | ,, | ,, |
| ३। | कर्णगी अरोइबा याहिप | ,, | ,, |
| ४। | इलिश अमागी महाओ | ,, | ,, |
| ५। | पिस्तौल अमा कुन्दालै अमा | ,, | ,, |
| ६। | जज साहेब की इमूङ | ,, | ,, |
| ७। | मोराम्बी अङाओबी | ,, | ,, |
| ८। | प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियाँ | हिन्दी — | मणिपुरी |
| ९। | रामचरित मानस ( बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, लंका काण्ड ) | ,, | ,, |
| १०। | नेपाली साहित्य का इतिहास | नेपाली — | हिन्दी |

११। केवल :— पादरी अध्यक्ष का दीप दान     अंगरेजी — हिन्दी
१२। आधुनिक लघु कहानियाँ     ,,    ,,
१३। पोम्पई के अन्तिम दिन     ,,    ,,
१४। ए टेल आफ टू सिटीज     ,,    ,,

इससे पूर्व जब हिन्दी-विभाग जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर अध्ययन संस्थान के अन्तर्गत कार्य कर रहा था, उस समय इस विभाग के प्रथम दल ( एम० ए० परीक्षा देने वाले ) के कुछ सदस्यों ने भी अनुवाद कार्य किया था। जैसे—

१। तीर्थ-यात्रा     मणिपुरी — हिन्दी
२। संक्षिप्त मणिपुरी साहित्य
का इतिहास     ,,    ,,

(द) एम० ए० के छात्रों द्वारा सम्पन्न लघु शोध-प्रबन्ध का कार्य —

१। मणिपुरी और हिन्दी में व्याकरणिक काल
२। मणिपुरी और हिन्दी में लिंग-व्यवस्था
३। मणिपुरी और हिन्दी के विशेषण का तुलनात्मक अध्ययन
४। हिन्दी और मणिपुरी कारक-रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन
५। राजस्थान और नेपाल के त्योहार गीतों का तुलनात्मक अध्ययन
६। राजस्थानी एवं मणिपुरी त्योहार गीतों का तुलनात्मक अध्ययन
७। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में नागार्जुन की कविताओं का अध्ययन

२० नवम्बर १९८७ को हिन्दी बिभाग के इतिहास में नया मोड़ आया। इस दिन विभाग के समस्त छात्रों ने एक बैठक करके मत निश्चय किया कि विभाग में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए 'हिन्दी परिषद' का गठन किया जाए। हिन्दी विभाग के अन्तर्गत गठित यह मंच जहाँ अपनी गतिविधि से छात्रों में सांस्कृतिक संचेतना पैदा करे

वहीं हिन्दी के प्रति रुचि का विस्तार भी करे। उस निश्चय के अनुसार उसी बैठक में छात्रों ने प्रथम 'हिन्दी परिषद्' का इस प्रकार गठन किया—

संरक्षक : प्रो० के० जे० महाले (कुलपति)
डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'
डॉ० जवाहर सिंह

परामर्श मण्डल : डा० जगमल सिंह
डा० लम्बोदर झा
डा० इबोहल सिंह काङ्जम
सुश्री ह० सुवदनी देवी

निदेशक : देवराज

अध्यक्ष : एल० नव सिंह

उपाध्यक्ष : एच० जनमेजय सिंह

सचिव : विनोद कुमार शर्मा

सह-सचिव : प्रदीप प्रसाद साहू

कोषाध्यक्ष : विभा गिरि

उप कोषाध्यक्ष : एन-जी० जामिनी देवी

प्रचार सचिव : दलबहादुर भट्टराई क्षेत्री

सदस्य : विजय प्रसाद सिंह, नीरजकुमार साहू, तारा सिंह बिष्ट, ए-के० नरेन्द्रजीत सिंह, एम० तोम्बा सिंह, रामप्रसाद प्रधान, एन० जी० पैट्रोनिला, के० एस-एच० इरावत सिंह, के-एच० राधे देवी, आर० के० शारदा देवी, पुनीता दास, वाई० देवेन्द्र सिंह, एल्लवीरा लीडिया, एच० रेणुबाला देवी।
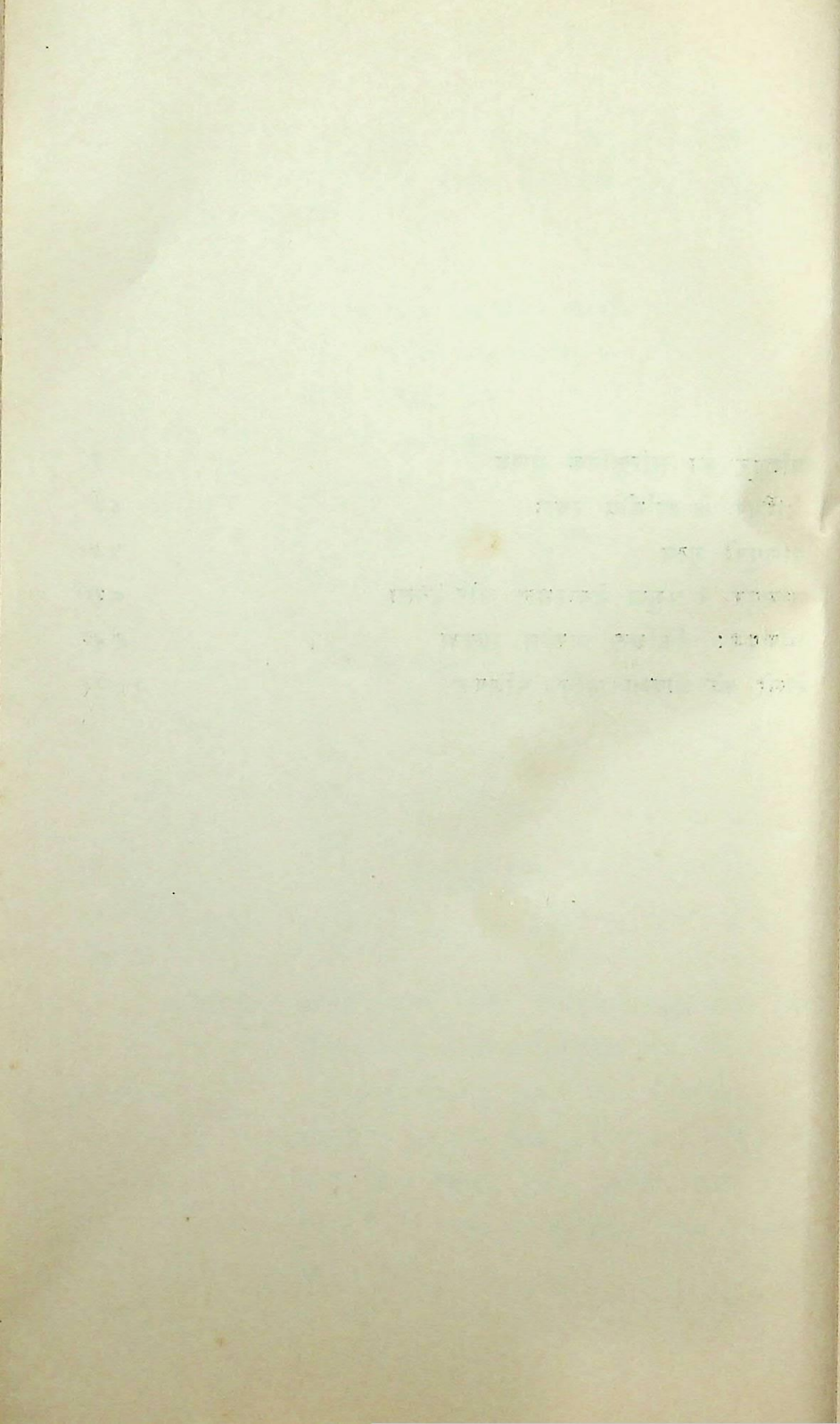
# मणिपुर का सांस्कृतिक वैभव

□ डॉ० जगमल सिंह

## मणिपुरी संस्कृति की प्राचीनता

'लैथाक लैखरोल' नामक मणिपुरी पुया ( पुराण ) में सृष्टि का उल्लेख है। मणिपुर की रचना की कथा भगवान महादेव गणेश जी को सुनाते हैं। नौ लाइ-पुमनिङथौ ( देवताओं) और सात लाइनूरा ( देवियों ) ने पृथ्वी को जल में फेंक दिया। इस तरह पृथ्वी की सृष्टि हुई। अतिया गुरु सिदबा ( शि[illegible]ो ) ने उस पृथ्वी पर नश्वर प्राणियों की सृष्टि की आज्ञा कोदिन नामक देवता को दी। कोदिन ने सात बंदर व सात मेंढक गुरु के सम्मुख रखे, जिनको गुरु ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उनमें ज्ञान नहीं है। तब कोदिन ने मनुष्य बनाकर गुरु के सम्मुख रखा जिसमें गुरू ने प्राण-प्रतिष्ठा की। बंदर को पर्वत पर, मेंढक को पानी में तथा मनुष्य को घाटी के समतल भू-भाग में छोड़ दिया। ये नश्वर प्राणी थे। अन्त में कोजिन्ता-थोकपा ( सूर्य ) तथा अशिबा ( चन्द्रमा ) की मनुष्याकृति में रचना कर के गुरु सिदबा अर्न्तध्यान हो गये। बाद में कुरुमचिंग पर्वत के बांखै नामक स्थान पर गुरु एक छेद से प्रकट हुए। उन्होंने अपने पुत्र कूपत्रेङ और सेंत्रेङ को बुलाया। उनके साथ सात देवता व देवियाँ भी नश्वर मानव के साथ मणिपुर आये। गुरु ने देवियों का देवताओं के साथ विवाह कर दिया। इन्हीं सात देवताओं की संतान मणिपुर में सात वंश के नाम से जानी जाती है।

सात वंशों से संबंधित एक कथा और प्रचलित है: एक दिन गुरु ने मृत गाय का रूप धारण कर लिया तथा विजया नदी में बहते हुए दिखाई दिए। सेंत्रेङ ने गाय की पूँछ का हिलना देखकर यह समझ लिया कि ये उसके पिता हैं जबकि कूपत्रेङ ने यह बात स्वीकार नहीं की। वास्तव में पिता ने अपने पुत्रों की परीक्षा के लिए ही यह छद्म-रूप धारण किया था। दोनों पुत्रों ने मृत गाय को नदी से निकाला। तब गुरु ने अपना मूल रूप धारण किया। उन्होंने अपने पुत्र सेंत्रेङ से कहा कि तुमने अपने पिता को पहचाना है अतः तुम्हें पाखंबा (पिता को जानने वाले) के नाम से पुकारा जाएगा। कूपत्रेंङ का रंग स्वर्णिम था अतः उन्होंने उसको सनामही (सना = सोना, मही = आग) कहा। मृत गाय के सात टुकड़े किए गए और उसके सात अंगों के रंगों से सात वंश जिन्हें येक या सैलाई कहा जाता है बने। इनके नाम हैं: अङम, निङथाओजा, लुआङ, खुमन, मोइराङ, चेंलैखाबा तथा डाङनब।

गुरु सिदबा ने दोनों पुत्रों को बुलाया तथा अपना राज्य सिंहासन देने की इच्छा प्रकट की, किन्तु इस शर्त के साथ कि दानों भाइयों में से जो पृथ्वी के चक्कर लगाकर पहले लौट आएगा वही राज सिंहासन पाएगा। सनामही ने काङ्ला के दक्षिण से पृथ्वी की परिक्रमा आरंभ कर दी। जबकि पाखंबा ने अपनी माँ की सलाह पर अपने पिता के सिंहासन की सात बार परिक्रमा की और पिता को जाकर प्रणाम किया। पिता ने उसको सिंहासन दे दिया।

सनामही (बड़ा भाई) जब लौट कर आया तो उसने अपने छोटे भाई पाखंबा को सिंहासन पर बैठे पाया। सनामही ने पाखंबा को युद्ध के लिए चुनौती दी तो पाखंबा ने जाकर देवियों— लैरम्बियों

की शरण ली। देवियों ने पाखंबा की रक्षा की। इस पर सनामही ने यह प्रण किया कि पाखंबा को सलाह देनेवाला यदि कोई पुरुष है तो वह उसका वध करेगा और स्त्री है तो वह उसके साथ विवाह करेगा। ऐसा कहते हैं कि अन्त में सनामही ने अपनी माता लैइमारेन से विवाह किया। क्रुद्ध सनामही ने अपने पंजों से धरती को खोदना शुरू किया। वह सारे संसार को नष्ट करना चाहता था। तब गुरु सिदबा ने आकर उसको शान्त किया तथा यह निर्णय लिया कि दोनों १२-१२ वर्ष तक बारी-बारी राज्य करेंगे। यह भी निर्णय किया गया कि पाखंबा सिंहासन पर बैठ गया है अतः सनामही प्रत्येक घर में पूजा जाएगा और उसकी माता लैइमारेन उसके साथ रहेगी।

पाखंबा को सर्प का अवतार भी माना जाता है। मणिपुर के ध्वज पर गुंजलक वाला सर्प चिन्ह के रूप में अंकित किया जाता है। सर्प को इसीलिए मणिपुर में पूजनीय भी माना जाता है और सर्प मारने का निषेध भी मणिपुरी समाज में प्रचलित है।

## नोङपोक निंगथौं और पांथोइबी

नोङपोक निंगथौं को पूर्व का राजा माना जाता है। वह नोंमाइचिंग पर्वत पर निवास करता है। वह शिव का अवतार माना जाता है। पांथोइबी लोइचांग पर्वत के मुखिया के घर जन्म लेती है। वह पार्वती का अवतार मानी जाती है। नोङपोक निंथौ और पांथोइबी के बीच प्रेम हो जाता है किन्तु पांथोइबी का विवाह खाबा से कर दिया जाता है। किन्तु वह खाबा को छोड़कर नोंपोक निंथो की खोज में निकलती है और इम्फाल में उससे मिलती है और उसके साथ रहने लगती है। आज भी इन दोनों की मणिपुर में पूजा की जाती है। यह परकीया-प्रेम की पौराणिक कथा है।

## नूमित काप्पा (सूर्य का शिकार)

सृष्टि के आदि काल में नोङ्‌इरेंबा (सूर्य) एवं ङोङजेन्बा (चन्द्रमा) को माता ने जन्म दिया। ये दोनों क्रमशः आकाश में उदय और अस्त होने लगे। हौङोंगला नामक एक चालाक शिकारी ने एक दिन सूर्य पर बाण चलाया जिससे सूर्य के रथ का एक घोड़ा घायल हो गया। सूर्य और चन्द्रमा उससे भयभीत होकर एक गुफा में जा छिपे। अंत में सूर्य की पूजा की गई तब सूर्य और चन्द्रमा पुनः आकाश में उदय एवं अस्त होने लगे।

यहाँ इन पौराणिक कथाओं को एक विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। मणिपुर में आजकल यह प्रचार हो रहा है कि मणिपुर का भारत से हिन्दू संस्कृति एवं धर्म की दृष्टि से कोई संबंध नहीं हैं। किन्तु जल से सृष्टि का विकास, शिव एवं दुर्गा, सूर्य और चन्द्रमा की पूजा—ये ऐसे तथ्य हैं, जो मणिपुरी पौराणिक कथाओं से मणिपुर का संबंध भारत से एवं हिन्दू संस्कृति से सिद्ध करते हैं। मणिपुर में अग्नि-पूजा भी प्रचलित है। आन्द्रो नामक स्थान पर पौरेतोन (३३ ई०) से आज तक निरन्तर अग्नि प्रज्ज्वलित है। प्रत्येक मैतै घर के दक्षिण-पश्चिमी कोने में फुङगा में अग्नि प्रज्ज्वलित रखी जाती है तथा उसे सनामही देवता का स्थान माना जाता है। हाँ इतना कहा जा सकता है कि मणिपुर की प्रचीन संस्कृति शैव-धर्म को मानने वाली थी। बारुनी उत्सव पर आज भी मणिपुर में शिव पूजा का विधान है जहाँ रात भर चल कर लोग बारुनी पर्वत पर बने मंदिर में जाते हैं तथा पूजा करते हैं। नवीन मत के मानने वाले लोग इन पौराणिक कथाओं को स्वीकार नहीं करते। वास्तव में मणिपुरी-मैतै-संस्कृति का वर्तमान स्वरूप संश्लिष्ट है और

शताब्दियों से यह संश्लेषण प्रक्रिया चली आ रही है, अतः निर्णायक मत शोध की अपेक्षा करता है।

मणिपुर के प्राचीन धर्म में वृक्ष पूजा का विधान था जिसको उमंग-लाई कहा जाता है। इनकी संख्या ३६५ मानी जाती है और इनकी पूजा में पत्र, पुष्प, खाद्य-पदार्थ आदि चढ़ाए जाते हैं।

पत्थर-पूजा का विधान भी मैतै-समाज में था और उन्हें पशुबलि दी जाती थी। पशुबलि में भैंसों, मिथुन और नर बलि तक के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

बलि का विधान भी हिन्दू संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है और वृक्ष पूजा का भी। अतः इस आधार पर मणिपुरी संस्कृति को हिन्दू संस्कृति या आर्य संस्कृति का अभिन्न अंग ही मानना होगा।

बलि तथा मदिरा पान के उल्लेखों द्वारा मणिपुरी संस्कृति को भारतीय संस्कृति से भिन्न सिद्ध करने का दावा किया जा रहा है। किन्तु वैदिक काल से ही बलि एवं सुरापान का विधान भारत में रहा है। अतः गरीब निवाज के शासन काल में सनामही देवता की पूजा के समय बलि एवं सुरापान करना मैतै संस्कृति को वैदिक संस्कृति से अभिन्न सिद्ध करनेवाला तथ्य है। निश्चय ही महाराज चराइरोङ्बा ( सन् १६९७—१७०६ ई० ) से पूर्व वैदिक, शैव, शाक्त, सनामही आदि धार्मिक प्रथाओं-परम्पराओं का वर्चस्व मणिपुर में रहा। जिसमें खान-पान आदि पर प्रतिबंध नहीं थे किन्तु बाद में जब वैष्णवीकरण हुआ तो उसको अंग्रेजों ने हिन्दूकरण कहा। वैष्णवीकरण के कारण ही खान-पान संबंधी प्रतिबंध लगाए गए।

सृष्टि काल से संबंधित इन पौराणिक कथाओं से मणिपुर की समृद्ध संस्कृति की प्राचीनता स्वयं सिद्ध है।

## पौराणिक महाकाव्य और मणिपुर

एक कथा के अनुसार राधा-कृष्ण ने रास-लीला की। शिवजी को उन्होंने प्रहरी नियुक्त किया। पार्वती भी उस स्थान पर जा पहुँची। शिवजी के मना करने पर भी पार्वती ने उस लीला को देख लिया और शिवजी से वैसी ही लीला करने की प्रार्थना की। शिबजी एकांत एवं उपयुक्त लीला स्थल खोजते हुए मणिपुर पहुँचे। उन्होंने पर्वतों से चारों ओर से घिरी क झील देखी। उन्होंने अपने त्रिशूल से पर्वतों में छेद कर दिया जिससे मणिपुर की सुरम्य घाटी निकल आई। शिव-पार्वती ने इसी घाटी में सात दिन-रात तक निरन्तर रास लीला की। देवता एवं गन्धर्वों ने संगीत का प्रबंध किया। रंग स्थली को शेषनाग ने मणि से प्रकाशित किया। इसलिए इस प्रदेश का नाम मणिपुर रखा गया।

महाभारत में और श्रीमद्भागवत में मणिपुर गंधर्ववंशी राजा चित्रवाहन के शासन का उल्लेख मिलता है। चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा का विवाह, जब पांडव अज्ञातवास काल में मणिपुर आये थे, तो अर्जुन से हूआ और अर्जुनपुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर का राजा बना था। महाभारत के आदि पर्व और अश्वमेधिक पर्व में मणिपुर का वर्णन है। मणिपुर के राजा अपने को अर्जुन का वंशज मानते आए हैं। संप्रति इस सिद्धान्त का विरोध किया जा रहा है और महाभारत एवं श्रीमद्भागवत में वर्णित मणिपुर को वर्तमान मणिपुर से भिन्न सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है, किन्तु मणिपुर में प्रचलित पौराणिक मिथक तथा लोक-कथाओं, किंवदंतियों आदि से महाभारत एवं श्रीमद्भागवत की मान्यता की पुष्टि होती है।

उल्लिखित सात वंश के लोग मैतै कहे जाते हैं जबकि पर्वतीय जन 'चिङगीमी' ( पर्वतीय जन )। लोक कथाओं में पर्वतीय जन एवं मैतै एक ही पूर्वज की संतान माने जाते हैं। कुछ लोग इस बात को नहीं मानते हैं। घाटी में बसनेवाले मैतै जन की संस्कृति एवं सभ्यता निश्चित रूप से पर्वतीय जन की तुलाना में बहुत समृद्ध है।

वर्तमान मणिपुर की सीमा में कई बार परिवर्तन हुए। मणिपुर के अनेक नामों का उल्लेख भी मिलता है। बर्मीलोग मणिपुर को कथै और मोगलै कहते थे। मेकले या मेखले, कोसी तथा मैतै लेवाक नाम भी मणिपुर के प्रचलित नाम रहे हैं। महेन्द्रपुर मैत्रबाक, काङलैपुङ, मोइराङ तथा पोंकथोङलम नामों का भी उल्लेख मिलता है।

## मध्यकालीन मणिपुरी संस्कृति

चैथरोल कुम्बाबा के अनुसार महाराजा चराइरोंङबा ( सन् १६९७–१७०६ ई० ) ने यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात वैष्णव धर्म स्वीकार किया था। तब से मणिपुर पर वैष्णव धर्म का प्रभाव अधिक होता गया। भारत के पश्चिमी भाग से धर्म रक्षार्थ आनेवाले आव्रजक ब्राह्मण वैष्णव धर्म और संस्कृति यहाँ लाए थे। १७०६ ई० में पामहैबा उर्फ गरीबनिवाज मणिपुर के महाराजा बने। अट्ठाहरवीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ निम्बार्क, मध्वाचार्य, रामानन्दी और गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के धर्म प्रचारक आए। शांति दास अधिकारी नामक साधुने गरीबनिवाज को अपना शिष्य बना लिया। गरीबनिवाज ने वैष्णव धर्म को राज्य धर्म घोषित कर दिया। प्रजा ने इस नवीन धर्मका का यह कहकर विरोध किया

कि यह हमारे धर्म से कोई भिन्न धर्म नहीं है। इस विवाद के कारण धर्म युद्ध हुआ। कहा जाता है कि राजा ने क्रोध में मणिपुरी भाषा में लिखे हुए १२० पुया ( पुराण ) ग्रंथों को जलवा दिया। वैष्णव धर्म के निषेध न मानने पर दंड की व्यवस्था की। मणिपुरी भाषा में गाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। मैतै मयेक ( लिपि ) के स्थान पर बंगला लिपि का प्रचलन आरंभ किया गया। इतिहासकारों ने जो भी आरोप लगाए हों किन्तु वास्तविकता यह है कि मणिपुर में नौथिंखों ( सन् ६६३ ) के शासनकाल से ही वैष्णव धर्म के साथ आदान-प्रदान आरंभ हो गया था। फयेङ ताम्रपत्र, जिसका समय आठवीं शताब्दी माना ज ता है को यदि प्रामाणिक माना जाए तो उसी समय से मणिपुर में विष्णु पूजा का प्रचलन मानना होगा। सन् १४७० ई० में तो विष्णु पूजा का मणिपुर में प्रचलन था ही इसका प्रमाण तो विष्णुपुर ( बिशनपुर ) का विष्णु मंदिर है ही। मणिपुर में राजा को विष्णु अवतार मानने की परम्परा भी अज्ञातकाल से मान्य रही है। अंग्रेज लेखकों ने इन तथ्यों की उपेक्षा करके १८ वीं शताब्दी से हिन्दूकरण की बात राजनैतिक एवं धर्मिक उद्देश्यों से कही है जबकि वास्तविकता यह है कि मणिपुर की संस्कृति का स्वरूप संश्लिष्ट है। मैतै धर्म के देवी-देवताओं, परम्पराओं-प्रथाओं आदि के साथ-साथ शताब्दियों से वैष्णव धर्म की मान्यताएं भी प्रचलित रही हैं।

## महाराजा भग्यचंद्र एवं राधाकृष्ण भक्ति का विकास

महाराजा जय सिंह जो बाद में राजऋषि भाग्यचंद्र के नाम से प्रसिद्ध हुए के राज्यकाल में गौड़ीय वैष्णव धर्म को राज्य धर्म घोषित किया गया। राज ऋषि की श्रीराधाकृष्ण भक्ति संबंधी अनेकों

किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उन्होंने कायना से श्रीकृष्ण भगवान की आज्ञा से कटहल का वृक्ष कटवाकर उससे श्रीकृष्ण के विग्रह बनवाए तथा श्री श्री गोविन्दजी, श्री विजयगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथ, श्री मदनमोहन और श्री अनुप्रभु मन्दिरों की स्थापना करवाई। उनकी भक्ति भावना के कारण ही स्थानीय वस्तुओं का मन्दिरों में भोग चढ़ाने की परम्परा आरंभ हुई। उन्होंने प्रथम रास-नृत्य का आयोजन किया जिसमें उनकी पुत्री बिम्बावती मंजुरी ने राधा की भूमिका निभाई। उनके शासनकाल में श्रीराधा-कृष्ण भक्ति भावना मणिपुर में स्थायित्व प्राप्त कर सकी। अपने जीवन के अंतिम काल में वे जब गंगा यात्रा पर गए तो उन्होंने बंगाल में शाक्त प्रभाव से मृत प्रायः श्रीराधा-कृष्ण भक्ति को पुनर्जीवित किया।

## ईसाई धर्म एवं मुसलमान धर्म

पर्वतीय जन आदिम अवस्था में रहते थे और उनमें मृत पूजा, वृक्ष पूजा एवं पशु पूजा आदि का प्रचलन था किन्तु लगभग एक सौ वर्ष पूर्व ईसाई मिशनरियों के द्वारा उन्हें ईसाई बनाना आरंभ किया गया। संप्रति लगभग सभी गिरिजन ईसाई धर्मावलम्बी हैं।

सन् १६०६ ई० में मुसलमान यहाँ सैनिक बंदी बनाकर लाए गए। तब से मणिपुर में मुसलमान धर्मानुयायी भी रहते हैं। मणिपुर में सभी धर्मों एवं सम्प्रदाय के लोगों में प्रेम एवं बंधुत्व की भावना पाई जाती है। बंगाल से आने से इन्हें 'पाङल' कहा जाता है। जैन, बौद्ध एवं सिख धर्मावलम्बी भी मणिपुर में पाए जाते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है।

## मणिपुरी संस्कृति की विशेषताएँ

मणिपुर की प्राचीन एवं अर्वाचीन सांस्कृतिक विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा चुका है। आज मणिपुरी संस्कृति

हिन्दू संस्कृति का अभिन्न अंग होते हुए भी अपनी अलग पहचान रखती है। शताब्दियों तक प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृति का संश्लेषण हुआ है।

## वेषभूषा :

यहाँ के पुरुष धोती-कुर्ता पहनते हैं तथा स्त्रियाँ कमर में तहमद बाँधती हैं जिसे फनेक कहा जाता है। यह तहमद कभी एक मात्र वस्त्र था जो स्त्रियाँ प्रयोग करती थीं और उसको स्तनों के ऊपर बांधा जाता था किन्तु अब यह तहमद पेटीकोट या लहंगे के ऊपर कमर के नीचे बाँधा जाता है और ब्लाऊज पहनकर ऊपर से चादर का भी प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों की पोशाक रंग-बिरंगी होती है जब कि पुरुष सफेद धोती-कुर्ते का प्रयोग करते हैं।

यहाँ की पोशाक की एक विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक है— प्रत्येक उत्सव में सबके वस्त्र एक ही रंग के होते हैं। विवाह एवं श्राद्ध के अवसर पर सभी पुरुष धोती-कुर्ता एवं शाल (सब सफेद) का प्रयोग करते हैं। जब कि स्त्रियाँ हल्के भगवे रंग का फनेक पहनती हैं और ऊपर सफेद रंग की चादर। कभी भी किसी भी मणिपुरी मैतै को आप गंदे वस्त्र पहने हुए नहीं देख सकते। अर्द्ध-नग्न पुरुष भी मणिपुर में नहीं देखा जा सकता। पोशाक के संबंध में इनकी सुरुचि उल्लेखनीय है। मणिपुरी मुसलमान पुरुष कुर्ता, पजामा पहनते हैं, सिर पर टोपी भी लगाते है। मुस्लिम स्त्रियाँ फनेक तो पहनती है, परन्तु ऊपर कुर्त्ता पहनती है तथा इनफी (चद्दर) से सिर ढंकती है। जनजातीय पुरुष कमर में लंगोटनुमा वस्त्र बांधते हैं और सारे शरीर को कम्बल या शाल से ढंकते हैं। महिलाएँ फनेक व शाल का प्रयोग करती है किन्तु इनके रंग जनजाति के अनुसार होते हैं।

## शारीरिक स्वच्छता :

प्रत्येक मैतै व्यक्ति बहुत सवेरे नहा लेता है। शौच जाने के बाद नहाना अनिवार्य होता है और वस्त्र भी बदलने होते हैं। स्त्रियाँ बिना नहाए-धोए रसोई घर में प्रवेश नहीं करती हैं। पहले रसोई व प्रत्येक बर्तन को साफ किया जाता है तब भोजन बनाया जाता है। बर्तन सब चमकते हैं। नहा धोकर ललाट में चंदन का तिलक लगाना भी नित्य नियम है। प्रत्येक घर में एक मंदिर है जिसमें प्रति दिन शाम सुबह पूजा आरती की जाती है। प्रत्येक आँगन में एक तुलसी का पौधा होता है। शारीरिक स्वच्छता में मणिपुर के लोगों का जीवन अनुकरणीय है।

## घरों की स्वच्छता

मैतै घर लगभग एक एकड़ पर स्थित होता है प्रत्येक घर के बाहर एक "शंगोई" (मंडप) होती है, जिसमें पूजा-पाठ, नृत्य-गान तथा सामूहिक भोज का आयोजन भी किया जाता है। घर बहुत ही साफ रखे जाते हैं। घर के चारों ओर एक बगीचा होता है। घर के चारों ओर बाँस के पौधे लगाकर एक बाड़ बनाई जाती है। आँगन में फूलों के पौधे लगाए जाते हैं। कोई भी घर गंदा नहीं मिलता, सब घर स्वच्छ रखे जाते हैं। पर्वतीय-जन के घर घास-फूस के बनाए जाते हैं तथा इनकी छतें ६०° के कोण के ढलान वाली होती हैं।

## मणिपुरी नारी

भारत के अन्य भागों से मणिपुरी नारी को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। यहाँ की स्त्री बहुत ही उद्यमी होती है। गृह कार्यों के उत्तरदायित्व के साथ-साथ वे कपड़ा-बुनने, कसीदाकारी

करने में भी बहुत कुशल हैं। क्रय-विक्रय का कार्य भी बाजार में स्त्रियाँ ही करती हैं। मणिपुर में देश का सबसे बड़ा महिला बाजार है, जहाँ सब्जियों से कपड़े तक बेचने का कार्य भी स्त्रियाँ करती हैं। वे बहुत ही चतुर होती हैं तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करती हैं। मणिपुरी नारी राजनैतिक दृष्टि से भी बहुत जागृत हैं। दो नूपी ( महिला ) लान ( युद्ध ) तो इतिहास प्रसिद्ध हैं। आधुनिक मणिपुरी महिला पुरुष के साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा करते हुए देखी जा सकती हैं। विवाह के संबंध में भी उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। दहेज प्रथा मणिपुर में अपरिचित हैं। किन्तु वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण पुत्र होना आवश्यक माना जाता है, किन्तु भारत के अन्य भागों की भाँति पुत्री जन्म को बुरा नहीं माना जाता है। लड़की को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता है, किन्तु कभी-कभी माता-पिता के द्वारा भी विवाह तय किए जाते हैं। किसी भी लड़की के विवाह के समय उसके कपड़े बनाने की कला देखी जाती है। जो जितना अच्छा कपड़ा बुन सके उसे उतनी ही अच्छी दुल्हन माना जाता है। अपहरण के द्वारा भी विवाह होते हैं। एक पुरुष कई पत्नियाँ भी रख सकता है। मणिपुरी नारी के लिए बहु-पत्नी प्रथा अभिशाप है। यहाँ की महिलाएँ सुन्दर, स्वस्थ एवं मृदु स्वभाव की होती हैं। इनके केश लम्बे, मुलायम होते हैं। विवाह विच्छेद की भी व्यवस्था है और साथ ही पुनर्विवाह पर भी कोई प्रतिबंध नहीं है। विधवाओं को भी विवाह करने की स्वतंत्रता है और इसको बुरा भी नहीं माना जाता। मणिपुर के कार्यालयों में पुलिस में तथा जीवन के हर क्षेत्र में नारी को कार्यरत देखा जा सकता है। साईकिल से कार तक चलाने में भी यहाँ की महिलाएँ पुरुष से होड़ लेती हैं।

## भोजन

मणिपुरी लोग प्रमुख रूप से चावल खाते हैं। साग-सब्जियों के साथ मछली खाना भी शाकाहारी भोजन माना जाता है, किन्तु वैष्णव लोग मछली के अतिरिक्त और किसी तरह का माँस या अंडा नहीं खाते।

सामूहिक भोज में ३० से १०० तक व्यंजन बनाए जाते हैं। भोजन में व्यंजनों की विविधता उल्लेखनीय है। सब्जियों में मिर्च का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। दूध तथा दूध के उत्पादनो का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। पर्वतीय जन मांसाहारी हैं।

## वर्ग-हीन सामाजिक व्यवस्था

मणिपुरी समाज में वर्ग-हीन समाज-व्यवस्था है तथा आदर केवल आयु के आधार पर दिया जाता है। पद या आर्थिक स्थिति के आधार पर सम्मान देने की व्यवस्था नहीं हैं। छोटों को इबूंङो अर्थात प्रिय तथा बड़ों को खुरा अर्थात चाचा कहा जाता है। सामूहिक भोज में भी वर्ग-हीन समाज की झलक साफ दिखाई देती है, जहाँ सभी एक ही पंगत में बैठकर भोजन करते हैं।

## सामूहिक दायित्व

मणिपुरी समाज में सामाजिक कृत्य-विवाह, श्राद्ध या जन्मोत्सव, सरस्वती पूजन आदि अवसरों पर मित्रों एवं सम्बधियों के द्वारा आर्थिक सहायता देने की प्रथा हैं, जिससे इन विशेष खर्च के

अवसरों पर किसी भी व्यक्ति को कोई आर्थिक कठिनाई नहीं होती है। विवाह बहुत ही सादा होता है और विवाह के दिन कोई भोज या जलपान नहीं किया जाता केवल पान और सुपारी तथा कबोक अर्थात खील और गुड़ का लड्डू वितरित किये जाते हैं।

## भिक्षुक-हीन भूभाग

अपंग एवं अपाहिज लोगों के लिए प्रत्येक बस्ती या मोहल्ले या गाँव में एक घर बना हुआ होता है, जहाँ उनके लिए उस बस्ती के लोग भोजन-वस्त्र की व्यवस्था सामूहिक स्तर पर करते है। इसीलिए मणिपुर में एक भी भिखारी देखने को नहीं मिलता है। कोई किसी का शोषण भी नहीं करता। वर्ग हीन ही नहीं पूर्ण समाजवादी समाज भी है।

## त्योहार एवं उत्सव

मणिपुर के लोग स्वभाव से ही उत्सव प्रिय हैं। इसलिए मणिपुर में कहावत है १२ महीने तेरह त्योहार। यों तो अनेक त्योहार एवं उत्सव मणिपुर में प्रचलित हैं। कुछ विशेष त्योहारों का यहाँ परिचय दिया जा रहा है:

## याओसङ या होली

फाल्गुन पूर्णिमा के दिन आरंभ होने वाला याओसङ मणिपुर का एक प्रमुख त्योहार है, जो छः दिन तक चलता है। होलिका-प्रहलाद की पौराणिक कथा से जुड़ा होने के साथ-साथ यह बसन्तोत्सव भी है। चैतन्य महाप्रभु के जन्म से भी इस त्योहार का सम्बन्ध माना जाता है। चैतन्य महाप्रभु को कृष्णावतार माना

जाता है, अतः होली के साथ कृष्ण एवं चैतन्य महाप्रभु का मणिपुरी होली से घनिष्ठ संबंध है। पूर्णिमा के दिन से कई दिन पूर्व ही याओसङ की तैयारियाँ होने लगती हैं। हर बस्ती में एक घास फूस की झोंपड़ी बनाई जाती है, जिसको पूर्णिमा के दिन चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति रख कर पूजा करके जलाया जाता है। होली के दिन सुबह युवक एक दूसरे को अश्लील गालियाँ देते हैं। ये दोनों बातें भारत के अन्य भागों में मनाई जाने वाली होली से मिलती हैं। याओसङ या झोंपड़ी को जलाने से पूर्व कीर्तन किए जाते हैं तथा धार्मिक पुस्तकों के श्लोक पढ़े जाते हैं तथा महाप्रभु की मूर्ति को निकाल लिया जाता है। जब याओसङ जलती है तो हरी बोला, हे हरी के नारे गूंज उठते हैं। राख को लोग उठाकर घर ले जाते हैं और अपने ललाट पर लगाते हैं। बची हुई राख को द्वार पर सुरक्षा कवच के रूप में रखा जाता है। होली के अवसर पर रंग अबीर भी लगाए जाते हैं।

याओसङ जलने के साथ ही बच्चे, विशेष रूप से लड़कियाँ घरों में जाकर या सड़क र चलने वालों से "पैसा पीरो" अर्थात पैसा दो कहकर पैसा माँगती है और प्रत्येक व्यक्ति को पैसे देने होते हैं। बच्चे घरों से चावल और सब्जियाँ एकत्र करते हैं और पैसे भी। यह दान एकत्र करने का काम चार दिन तक होता है। इस एकत्र किए गए सामान व पैसे से अन्त में एक भव्य सामूहिक भोज किया जाता है।

थावल चोङबा नृत्य भी याओसङ के दूसरे दिन से शुरू होता है। आजकल यह नृत्य दोपहर के बाद शुरू हो जाता है और लगभग मध्य रात्रि तक चलता है। युवक-युवतियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर एक वृत में नाचते हैं और वृतके केन्द्र में ढोलक

या ढोल बजाया जाता है तथा एक गायक खड़ा रहता है जो एक पंक्ति गाता है और उसके साथ सब लोग समवेत स्वर में उस पंक्ति को दोहराते हैं इस समय गाए जाने वाले गीतों में सृष्टि कथा, पौराणिक आख्यान तथा प्रेम कथाएँ होती हैं।

होली के साथ जुड़ी विशिष्ट परम्पराएं हैं हलंकार तथा दोल ( दल ) यात्रा। इन जलूसों में सैंकड़ों से हजारों लोग होते हैं। भगवान विष्णु की प्रतिमा एक सफेद घोड़े पर रखकर प्रत्येक कीर्त्तन दल श्रीगोविन्दजी के मंदिर में पहुँचता है। हर दल का अपना झंडा होता है और सिर पर पगड़ी बंधी होती हैं। श्रीगोविन्दजी के मंदिर के सामने ये लोग कृष्ण जीवन पर आधारित नाट्य नृत्य एवं गान गाते हैं तथा श्रेष्ठ दल पुरस्कार प्राप्त करते हैं।

श्रीविजयगोन्दि जी के मंदिर में श्रीकृष्ण-होली या बसंत-रास का पूर्णिमा के छठे दिन आयोजन किया जाता है। राधा एवं गोपीयाँ कृष्ण के साथ होली खेलती हैं। इन दोनों मंदिरों में होने वाले रास दर्शनीय है।

होली के साथ थाबल चोंगबा, हलंकार तथा चैतन्य महाप्रभु की पूजा कीर्त्तन तथा पैसा पीरो— य चार परम्पराएँ मणिपुर की होली की अपनी विशेषता है।

## बारूनी

इम्फाल से लगभग १ किलो मीटर की दूरी पर पूर्व दिशा में नोंगमाइचिङ नामक पर्वत पर एक शिव मंदिर हैं। पर्वत शिखर पर एक मंदिर है जिसमें शिवलिंग है। फाइरेन ( जनवरी-फरवरी )

मणिपुरी महीने के तेरहवें दिन कृष्ण पक्ष में लोग वारुनी मंदिर में पूजार्थ जाते हैं। गाँव-गाँव से भक्तों के दल आते हैं और चिंगोइ नदी की जल धारा में डुबकी लगाने के पश्चात् उत्तर की ओर से नोंगमाइचिंग पर्वत पर सूर्यास्त के साथ चढ़ना शुरू करते हैं। इनके हाथों में मशालें होती हैं। अन्धेरी रात में भक्तों की मशालों की कतार देखने योग्य होती है। शिखर पर बने मंदिर में पहुँचकर वहाँ पूजा की जाती है और दक्षिणा देकर दूसरे दिन सुबह पर्वत के दूसरी तरफ के रास्ते से ये यात्री उतरते हैं। इस पर्वत का संबंध मणिपुर के पौराणिक देवता नोंङपोक ( शिव अवतार ) तथा पान्थोइबी (पार्वती अवतार) से भी जुड़ा हुआ है। मणिपुर में शिव-पार्वती की पूजा पौराणिक काल से होती है। इससे मणिपुर का हिन्दू धर्म से पौराणिक-काल से संबंध सिद्ध होता है।

उत्तरी भारत में इसी दिन गंगा सप्तमी का पर्व मनाया जाता है।

## दुर्गा-पूजा

भारत के अन्य भागों की भाँति मणिपुर में भी दस दिन तक दुर्गा पूजा का त्योहार मनाया जाता है। इन दस दिनों में नाखून और बाल काटना निषिद्ध होता है तथा विवाहित पुत्रियाँ अपने पिता के घर भी नहीं जा सकती। स्थान-स्थान पर मंडप बनाए जाते हैं और दुर्गा की पूजा की जाती है। किन्तु मणिपुरी लोग बलि नहीं चढ़ाते जब कि अन्य लोग कबूतर, बकरे, बतख, भैंसे आदि की बलि देते हैं। बोर ( वर ) प्राप्त करने के दिन हियांथाङ लाइरेम्बी ( कामख्या ) के मंदिर में लोग वर प्राप्त करने जाते हैं।

दुर्गा पूजा के साथ मणिपुर का स्थानीय त्योहार क्वाक जात्रा जुड़ा हुआ है। इस त्योहार के साथ राम-रावण युद्ध

और श्राद्ध पक्ष में कौओं को खिलाने की हिन्दू परम्पराएँ मिश्रित हो गई हैं।

मणिपुरी त्योहारों का स्वरूप देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू त्योहारों को भी यहाँ स्थानीय रंग देकर ही स्वीकार किया गया है तथा आज इनका मिश्रित रूप ही दिखाई देता है। मणिपुरी और हिन्दू त्योहारों में पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ है।

## दीपावली

मणिपुर में भी कार्तिक अमवस्या के दिन दीपावली का त्योहार मनाया जाता है। लक्ष्मी पूजा के साथ मणिपुर में इस त्योहार के साथ आनन्द एवं उत्सव का भाव भी रहता है। रात्रि के समय दीपक, मोमबत्ती आदि जलाए जाते हैं और घरों को पुष्प मालाओं से तथा कागज के फूलों से भी सजाया जाता है। आतिशबाजी भी की जाती हैं। लक्ष्मी पूजन किया जाता है। स्नान, पूजा स्वच्छ नए वस्त्र पहनने का तथा घरकी सफाई करने की परम्परा भी है। जुआ भी खेला जाता है और दीपावली बीतने पर भी सड़क के किनारे खुले आम कई दिन तक जुआ खेला जाता है। निङोलचाक्कौबा या भैया दूज का त्योहार भी मणिपुर में प्रचलित है जिसमें बहिन भाई के घर जाकर भोजन करती है, तथा दान दक्षिणा भी प्राप्त करती है।

## सरस्वती पूजा

भारत के अन्य भागों की भाँति मणिपुर में विद्यार्थी बसन्त पंचमी के दिन सरस्वती पूजा करते हैं। प्रत्येक बस्ती में स्कूल, कॉलेज में दो झोंपड़ी या मंडप बनाए जाते हैं। एक में सरस्वती

की प्रतिमा रखी जाती है दूसरी में पूजा सामग्री । सरस्वती की जय के नारे लगाए जाते है तथा सरस्वती की प्रार्थना गाई जाती हैं । सरस्वती की प्रतिमा के साथ जलूस भी निकाले जाते हैं। सरस्वती की प्रतिमा का मुँह दक्षिण या पूर्व दिशा में रखा जाना चाहिए। सरस्वती की पूजा का अनुष्ठान किसी ब्राह्मण के द्वारा किया जाता है । पूजा के बाद मिठाई, पुड़ी व खेचरी या खिचड़ी प्रसाद के रूप में वितरित की जाती है । दूसरे दिन प्रतिमा का बिसर्जन किया जाता है।

रथ-यात्रा

महाराज गम्भीर सिंह ( १८२५ से ३४ ई० ) ने कांग (रथ) यात्रा का प्रारंभ किया। जून—जुलाई के बीच कभी यह उत्सव मनाया जाता है। जगन्नाथ स्वामी की पूजा एवं रथ यात्रा की यह प्रथा उड़ीसा से बंगाल होती हुई मणिपुर में आई होगी। रथ यात्रा का चार पहियों का रथ बनाया जाता है जिस पर २० फीट ऊँचाई की भगवान जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें भक्त लोग खीचते हैं। मूर्तियों के पास दो मणिपुरी कन्याएँ या ब्राह्मण पंखे झलते हुए खड़े रहते हैं और मूर्तियों पर एक चंदोवा ताना जाता है। जहाँ भी रथ रुकता है भक्त जन बर्तिका भेंट चढ़ाते हैं जो घी में डूबोई हुई होती है और पुजारी आधी जली हुई बती भक्तों को लौटाते हैं जिसे वे लोग अपने सिर पर लगाते हैं तथा उसे अपने घरों के द्वार पर सभी संकटों से रक्षा कवच के रूप में ले जाकर रखते हैं। मृदंग, झाल, शंख आदि वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं। उपस्थित लोगों को खिचड़ी विवरित की जाती है। संध्या के समय बिभिन्न मंडपों में सामूहिक भोज होते हैं। खुबाक इशै नामक कीर्त्तन किया जाता हैं। इसमें

कृष्ण जीवन से संबंधित नाट्य गीत एवं नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं। ऐसा कहते हैं कि रथ यात्रा के अंतिम चरण में लोग एक दूसरे पर कीचड़-पानी आदि फेंकते थे किन्तु अब इसका प्रचलन नहीं है।

## जन्माष्टमी

कृष्ण जन्म एवं कंस के हाथों से उनके बचने की कथा के आधार पर जन्माष्टमी त्योहार मणिपुर में मनाया जाता है। कृष्ण जन्म के चौबीस घण्टे पूर्व से व्रत का विधान है और नवमी के दिन प्रातः काल यह व्रत खोला जाता है। सभी मंदिरों में भीड़ एकत्र होती है और कृष्ण जन्म की कथा ब्राह्मणों के मुख से सुनी जाती है। जन्माष्टमी की स्थानीय विशेषता यह है कि बालकों को भेंट दी जाती है तथा यूबीलाकपी ( नारियल छीनने ) का खेल खेला जाता है तथा दूसरा खेल लिकोल सनाबा खेला जाता है। यह दूसरा खेल कौड़ियों द्वारा खेला जाता है।

# मणिपुर के स्थानीय त्योहार

## लाइहराओबा

लाइहराओबा मणिपुरी समाज का पौराणिक त्योहार है और इसमें मणिपुर की पौराणिक संस्कृति सुरक्षित है। इसमें संदेह नहीं कि इस पर भी हिन्दू धर्म तथा परम्पराओं का प्रभाव भी पड़ा है। यह देवताओं को प्रसन्न करने का उत्सव है। पाखङ्बा से थाङजिङ आदि जितने भी देवता हैं उन सबकी प्रसन्नता के लिए यह त्योहार मनाया जाता है और लाईहराओबा नाट्य, नृत्य एवं गीत-संगीत का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर स्थानीय देवताओं के मंदिर में नृत्याभिनय नाटिकाएँ प्रस्तुत की जाती हैं

और सृष्टि के आदि से नृत्य-गीत-अभिनय युक्त कथा का प्रारम्भ किया जाता है और आज तक की दैनिक क्रियाओं का प्रदर्शन किया जाता है। पेना नामक ( एकतारा ) वाद्य यंत्र पर गीत गाए जाते हैं। इसमें माइबी अर्थात पुजारी ( स्त्री व पुरुष ) भाग लेते हैं और उनके साथ विभिन्न देवी देवताओं की भूमिका में अनेक युवक युवतियाँ भी भाग लेती हैं। लाइहराओबा संसार का सबसे लम्बे समय तक चलनेवाला त्योहार है। वर्ष में चार महीने लाइहराओबा के आयोजन पर प्रतिबंध है। शेष आठ महीने यह त्योहार मनाया जाता है।

## हैकरु हिदोङबा

हैकरु अर्थात आंवला तथा हिदोङबा अर्थात वह नाविक जिसने आंवले की माला अपने गले में पहनी हो। यह मणिपुर का अत्यंत प्राचीन त्योहार है। आश्विन महीने की कृष्णा एकादशी के दिन यह त्योहार अपनी गौरवपूर्ण परम्परा के साथ विजय गोविन्द मंदिर की परिखा में नावों की दौड़ के रूप में मनाया जाता है। प्रतियोगी नाविक अपने मल्लाहों के साथ अपनी-अपनी सुसज्जित नाव पर सवार होते हैं। मुख्य नाविक के गले में आंवले की माला होती है। नावों की दौड़ होती है और विजेता नाविक को पुरस्कार दिया जाता है। इस त्योहार से पूर्व आंवला खाना निषिद्ध है। भगवान विष्णु की प्रतिमा के सम्मुख इस प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है।

## चैराओबा

चैराओबा का शाब्दिक अर्थ है— छड़ी से घोषित करना वास्तव में यह नववर्ष का प्रथम दिन होता है। प्राचीन काल में राजाओं के समय यह अपनी अनूठी शान से मनाया जाता था

किन्तु अब केवल घरोंकी सफाई तथा अपने से बड़ों को सम्मान देने तथा अच्छा भोजन खाने तक ही इसका महत्व रह गया हैं। हाँ, अब भी परम्परा के अनुसार लोग दोपहर का भोजन करने के पश्चात शाम के समय पर्वत पर चढ़ते हैं, जिसके शिखर पर शिव जी का मंदिर बना हुआ है। इसे चैराओ चिङ्‌ काबा कहते हैं।

## जन-जातीय त्योहार

मणिपुर में ३० से अधिक जनजातियाँ हैं, जिनके अपने-अपने त्योहार हैं। तांखुल जाति के लुइरा, यारा, मङखाप, चुम्फा और थिशाम अनाल जाति के इकाम, इंहला, फिजथाहला, मिखेनफाम और सुङ कोमलखाम, थौडो जाति का चोन, कबुई जाति का गान-ङाइ तथा कुकी जाति का कूट प्रसिद्ध त्योहार है। जैन, मणिपुरी मुसलमान, सिख तथा नेपाली लोग भी अपने धर्म के त्योहार मनाते हैं।

## मणिपुर के घरेलू त्योहार

लाई चाकलोन कतपा त्योहार अपने वंश के देवता की पूजा के लिए मनाया जाता है तो अपोकपा खुरुम्बा त्योहार परिवार के पूर्वजों की स्मृति में तथा सनामही तथा लैमरेन त्योहार इन दोनों देवताओं की पूजा के लिए मनाया जाता है। ये तीनों मणिपुर के विशिष्ट घरेलू त्योहार हैं

## मणिपुर के संस्कार

मणिपुरी समाज में प्रचलित संस्कारों पर हिन्दू-वैष्णव धर्म पद्धति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जन्म, विवाह एवं मृत्यु संस्कारों में हिन्दू विधि-विधान के साथ स्थानीय तत्व भी समिश्रित हैं।

## उपनयन संस्कार

मणिपुर में उपनयन से पूर्व बालकों पर किसी प्रकार के निषेध लागू नहीं होते और वे इससे पूर्व सब कुछ खा सकते हैं। ब्राह्मण बालक ६ से १४ वर्ष की अवस्था के बीच यज्ञोपवीत धारण करते हैं। क्षत्रिय बालक कुछ विलम्ब से। ब्राह्मण को जनेऊ में ९ धागे होते हैं जबकि क्षत्रिय कुमार की जनेऊ में ६ धागे होते हैं। जनेऊ पहनने को लूगून थांगबा कहते हैं और यज्ञोपवीत को लाईमिंग लौबा।

## जन्म संस्कार

हिन्दू पद्धति से ही जन्म संस्कार का विधान है किन्तु इसमें स्थानीय गृह देवता की पूजा भी की जाती है। जन्म के समय स्त्री को एक अलग घर में रखा जाता है। जिसे चाबोक-शङ कहा जाता है। जब तक उस घर को पवित्र नहीं कर लिया जाता उसमें कोई धार्मिक कृत्य नहीं किया जा सकता है। परम्परानुसार बच्चे को जन्म देते समय माता को घुटनों के बल बैठना होता था। उपस्थित दाई या माइबी बच्चे की नाभि-नाल बाँस के विशिष्ट चाकू से काटती है। नाल को एक मिट्टी के बर्तन में रखकर लड़का होने पर घर के दाहिनी ओर और लड़की होने पर बाई ओर गाड़ दिया जाता है। जन्म के प्रथम तीन दिन तक बालक की देखरेख दाई के द्वारा की जाती है बाद में माँ के द्वारा। प्रसूति को प्रसव के प्रथम छः दिन तक प्रसूति-गृह में रहना पड़ता है जब कि छठे दिन शाम को स्वस्ती पूजा होती है। उस दिन प्रसूता के माता-पिता उसके लिए भोजन लेकर आते हैं। बच्चे के लिए उपहार भी लाए जाते हैं और बालक का पिता सामूहिक भोज देता है। पूजा ब्राह्मणों के द्वारा संपन्न की जाती है।

सातवें दिन पुनः कुछ अनुष्ठान किए जाते हैं और प्रसूता प्रसूती घर से बाहर आती है। किन्तु अभी भी उसे केवल मछली व चावल तथा नमक खाने को दिया जाता है। उसके बाद चार सप्ताह तक वह भोजन नहीं बनाती है। पाँच सप्ताह के बाद सारे घर की सफाई की जाती है जन्म के समय के बिस्तर व बर्तनों को बदल दिया जाता है और तुलसी दल डाले हुए जल का छिड़काव करके घर को पवित्र किया जाता है।

## विवाह संस्कार

ब्रह्म विवाह ही सामान्य रूप से किए जाते हैं। नुपी हायबा से विवाह संस्कार के विधान का आरंभ होता हैं जिसमें वर-पक्ष वाले कन्या पक्ष को भेंट देते हैं और कन्या की माँग करते हैं। याथङ थानबा विधि में विवाह की विधिवत स्वीकृति दी जाती है। इसके बाद वारोइपोत-पूबा विधि होती है जिसमें वर पक्ष के लोग कन्या के घर भोजन, वस्त्र लेकर जाते हैं। इसके बाद हैजिङपोत पुबा विधि होती है जिसमें होने वाले विवाह का सब को पता चल जाता है। वर-पक्ष के लोग सात टोकरी फल-वस्त्र आदि लाते हैं।

विवाह के एक दिन पूर्व वर को औपचारिक निमंत्रण कन्या के छोटे भाई या किसी संबंधी द्वारा दिया जाता है। विवाह कन्या के घर पर सम्पन्न होता है। वर के साथ एक पुत्रवती महिला आती है जो एक टोकरी में फल-फूल आदि लाती है। विवाह संस्कार के साथ साधारणतः कीर्त्तन होता है और धार्मिक गीत गाए जाते हैं। विवाह मंडप में वर के सामने कन्या आकर बैठती है और मंत्रोचार के साथ कन्या उठकर वर के सात फेरे

लगाती है और उस पर फूलों की बौछार करती है। फिर वह अपने स्थान पर पुनः बैठ जाती है तथा वर-वधू एक दूसरे के गले में माला पहनाते है। दोनों के वस्त्र के छोर एक दूसरे से बाँधे जाते हैं। अन्त में वे एक दूसरे के बीच में पान-सुपारी अदान प्रदान करते हैं। उसके पश्चात् कन्या उठकर घर में जाती है तथा वहाँ से कन्या डोली में बैठाकर वर के घर पहुँचाई जाती है जबकि वर पहले ही अकेला बरात के साथ चला जाता है।

यह ब्रह्म विवाह है। किन्तु मणिपुर में कन्या को भगाकर गंधर्व विवाह भी किया जाता है। भगाने के पश्चात् विवाह उपर्युक्त विधि से सम्पन्न किया जाता है। विवाह विच्छेद भी प्रचलित है। विधवा को तथा विवाह विच्छेद के बाद स्त्री को पुर्नविवाह का अधिकार है तथा इसे बुरा नहीं माना जाता है।

## मृत्यु-संस्कार

मृत्यु घर में नहीं हो इसके लिए मरने वाले को घर के बाईं ओर के बरामदे में ले जाया जाता है जहाँ वह मरे या इसी उद्देश्य से बनाई गई झोंपड़ी में ले जाते है। मर जाने के बाद उसको नहलाया जाता है और फँक आगे रखकर शव को निकाला जाता है। मृतक के घर से आग, जलाने की लकड़ी व चार बाँस गाड़कर ऊपर कपड़े का छप्पर बनाने के कपड़ा दाह संस्कार के स्थल पर पहले पहुँचाए जाते हैं। हिन्दू पद्धति के अनुसार नदी के किनारे दाह संस्कार किया जाता है। मृतक के शरीर पर वस्त्रों के अतिरिक्त कुछ नहीं रखा जाता। चिता की घर के सब लोग परिक्रमा करते हैं और बच्चे और महिलाएं चिता में आग देते

का साथ वहाँ से चले जाते हैं। चिता में आग उसका उत्तराधिकारी पुरुष देता है। दाह क्रिया में भाग लेने के उपरान्त घर में नहाकर ही जाना होता है और घर के द्वार पर कोई व्यक्ति आग लेकर खड़ा रहता है, जिसको छूकर ही लोग घर में प्रवेश करते हैं। पूरे घर को धोया जाता है तथा मृतक का बिस्तर भी जला दिया जाता है। तब अस्थि संचय किया जाता है और अस्थि को पुरी या वृन्दावन ले जाने का नियम भी प्रचलित है। श्राद्ध होने तक पूरा परिवार मछली नहीं खा सकता है। नौ, सात व तेरहवें या पन्द्रह वें दिन श्राद्ध किया जाता है। तब तक रोज घर में कीर्तन होता है। श्राद्ध के अंतिम दिन महाभोज व कीर्तन का आयोजन किया जाता है। एक वर्ष बाद मृत्यु के दिन पुनः श्राद्ध करना होता है। इस अवसर पर पूर्ण शाकाहारी भोज दिया जाता है।

बालक के मरने पर शव को गाड़ने की प्रथा है। प्रसव के समय मरने वाली स्त्री के अंतिम संस्कार के नियम भी कुछ भिन्न हैं तथा आत्मघात करनेवालों का दाह संस्कार नहीं किया जाता। उसके शव को एक निश्चित स्थान लाङ्गोल पर्वत पर फेंक दिया जाता था परन्तु अब ऐसा नहीं किया जाता।

हाँ, मृतक को एक लकड़ी के सन्दूक में बंद करके ले जाया जाता है तथा चिता पर धागा व नाव की आकृति रखने को प्रथा भी प्रचलित है।

## मणिपुरी नृत्य

मणिपुर अपने नृत्य के लिए भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। मणिपुरी नृत्य मणिपुर के जीवन का एक

संस्कृति का अभिन्न अंग है। कई शताब्दियों में जाकर मणिपुरी नृत्य का विकास हुआ है जो अब अपनी अलग पहचान रखता है और भारत के नृत्यों में अपना विशिष्ट स्थान । आधुनिक मणिपुर प्राचीनकाल में अनेक जनपदों एवं लघु राज्यों में विभाजित था, आज भी मणिपुरी नृत्य पर अपने प्राचीन जनपदों की छाप अंकित है। मणिपुरी नृत्य एवं संगीत के इतिहास एवं विकास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

## प्राचीनकाल के नृत्य

मणिपुर के शास्त्रीय नृत्य मणिपुर में सृष्टिकाल से ही प्रचलित थे, जब कि मणिपुरी नृत्य का उत्तर काल में केवल उसी नींव पर विकास हुआ है। मूल धारणाओं की स्थापना प्राचीन काल में हुई थी। मणिपुर के इतिहास के प्रारंभ से ही नृत्य संगीत एवं धर्म तीनों परस्पर घनिष्ट रूप से संबंधित थे । चाहे मणिपुर की घाटी के लोग हो या पर्वतों के दोनों के लिए ही यह तथ्य है । नृत्य केवल नृत्य न होकर धार्मिक कृत्यों से सुसम्बद्ध रहा है। विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अत्यंत विनम्रता एवं समर्पण भाव के साथ नृत्यों का आयोजन किया जाता रहा है। परिणाम स्वरूप मणिपुरी नृत्य की प्रमुख सामान्य विशेषताएं निम्न प्रकार हैं :

— नृत्य शाला की पवित्रता,
— नर्तकों एवं दर्शकों के मध्य वार्तालाप, संकेत आदि का निषेध।
— नृत्य में देवता के प्रति अति विनम्रता एवं समर्पण।
— नृत्य अनुष्ठान हैं, न कि दर्शकों के मनोरंजन का साधन।
— नृत्य व्यावसायिक नहीं बन सका।

— शास्त्रीय तत्व के ताल-गीत के नियमों के उपरान्त भी मणिपुरी नृत्य आज भी लोक नृत्य है और कोई भी मणिपुरी चाहे उसको नृत्य की शिक्षा मिली हो या नहीं नृत्य में भाग ले सकता है। नृत्यों की इन सामान्य विशेषताओं के उपरान्त हम मणिपुर के कुछ प्रमुख नृत्यों का वर्णन करेंगे :

## लाइहराओबा :

वसन्त ऋतु से वर्षा ऋतु के मध्य लाइहराओबा नृत्य का आयोजन होता है। नृत्यों का संबंध ऋतु परिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ है। लाइ का अर्थ है, देवता और हराओबा का अर्थ है उत्सव या देवता को बुलाना तथा उसको प्रसन्न करना। यह नृत्य वसन्त एवं वर्षा ऋतु के मध्य प्रत्येक गाँव, बस्ती में अपनी निराली शान के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य शृंखला का आयोजन स्थानीय देवताओं के मंदिर के प्रांगण में किया जाता है। आश्चर्य की बात है कि मणिपुर के लोगों के मन में अपने प्राचीन देवताओं तथा हिन्दू धर्म के देवताओं के बीच कोई भेद भाव नहीं है। संभवतः इन दोनों परम्पराओं के बीच में कोई सामान्य विशेषता है जिसने इन दोनों का सहज समिश्रण कर दिया है तथा इनमें विरोध के स्थान पर सहमति पाई जाती है।

लाइ हराओबा प्राचीन जनपदीय महत्वपूर्ण उत्सव था। जिसमें राजा, सामन्त जन केवल दर्शक नहीं होकर स्वयं भागीदार भी होते थे। यह उत्सव मणिपुरी नृत्य की जन्म भूमि थी साथ ही इसी उत्सव ने इसका पोषण भी किया है। राजा अपनी रानियाँ, राज कुमारियाँ अपने विशिष्ट क्षेत्रों में प्रतिभावान युवकों के साथ इस उत्सव में नृत्य करते थे। पति-पत्नी भी इसमें सम्मिलित होते

थे तथा युवक स्वयं युवतियाँ भी। अघोषित प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता का भाग इस उत्सव की विशेषता थी और प्रत्येक प्रतिभागी उत्तमोत्तम नृत्य एवं पोशाक के साथ इसमें भाग लेता था। इस तरह संपूर्ण समाज में एकता का वातावरण स्थापित करना तथा संपूर्ण मनुष्य जाति को एक बंधन में बाँधना तथा संस्कृति का विकास करना, इस उत्सव का उद्देश्य था।

लाइ हराओबा में एकाकी, द्वैत एवं समूह नृत्य किए जाते हैं। लाइ हराओबा नृत्य का प्रमुख भाग होता है सृष्टि के उद्भव एवं विकास का क्रमशः नृत्य एवं संगीत के माध्यम से खुले मैदान में अभिनय प्रस्तुत करना। गंभीर वातावरण में दोपहर के बाद से संध्या तक यह नृत्य अभिनय चलता है। नृत्य गुरु नर्तक दल को खुले मैदान में ले जाते हैं, जहाँ प्रतिभागी तथा दर्शक सब एकाग्रचित्त होकर अनुष्ठानों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। देवी देवताओं का मिलन, गर्भ धारण प्रक्रिया, जन्म, बालक का विकास, भौतिक आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए संघर्ष, कृषि, बुनाई, घर बनाने तथा अन्य सब कलाओं की प्रक्रिया तथा ईश्वर के प्रति कर्तव्य का पालन क्रमशः नृत्याभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य के साथ गाई जाने वाली प्रार्थनाओं में राजा तथा प्रजा के कल्याण की तथा समृद्धि की प्रार्थनाएँ होती हैं।

प्राचीन परम्परा के अनुसार समर्पित पुजारी एवं पुजारिनें जिन्हें क्रमशः माइबा व माइबी कहा जाता है, पुजारी का अभिनय करते हैं। माइबी एक विशेष पंथ है जिसमें स्त्री या पुरुष निश्चित प्रक्रिया पूरी करने तथा आजन्म समर्पित रहने पर ही प्रवेश पाता है। पुरुष हो या स्त्री इस सम्प्रदाय में सम्मिलित होने के लिए उसे स्त्री वेष धारण करना होता है और वह लिंग

भेद के उपरान्त भी मायवी ही कहे जाते हैं। गुरुकी देखरेख में मायवी को कई अभ्यास करने पड़ते हैं। समाधिस्थ अवस्था में मायवी लोग अपने देवता के संदेश प्राप्त करते हैं और उन्हें लोगों तक पहुँचाते हैं। ये समाज एवं व्यक्ति दोनों के लिए भविष्यवाणी करते हैं, जो सत्य सिद्ध होती हैं। चोरी, खोए हुए लोगों या व्यक्तिगत भविष्य कथन के लिए मायवी धरती पर सिक्के फेंकते हैं तथा उनसे अपने निष्कर्ष निकालकर प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

लाइ हराओबा नृत्य के बाद में कई प्रकार के खेल-कूद भी होते हैं जिनमें योग्य युवक-युवतियाँ भाग लेते हैं। मणिपुरी लोगों की आरंभ से खेलकूद के प्रति गहरी अभिरुचि रही है और इसीलिए पोलो, खोंग कांगजे ( मणिपुरी हॉकी ) मुकना (कुश्ती) और कांग नाम खेल यहाँ बहुत लोकप्रिय है। कांग खेल मणिपुर का बहुत प्राचीन खेल है। इस खेल की देवी पांथोइबी मानी जाती है और पांथोइबी दुर्गा का स्थानीय नाम है और इसे युद्धों तथा शत्रुओं का नाश करने वाली देवी के रूपमें पूजा जाता है।

लाइ हराओबा नृत्य के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि वह सृष्टि निर्माता भगवान के सृष्टि के खेल की अनुकृति है। सृष्टि के निर्माण से आरंभ करके दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं को इस नृत्य में दिखाया जाता है। इसमें नर्तकों की गीत बहुत ही सुन्दर एवं गौरवपूर्ण होती है। इस नृत्य में एकतार बजाया जाता है जिसको स्थानीय भाषा में पेना कहा जाता है। लाइ हराओबा नृत्य को शास्त्रीय नृत्य माना जाता है। इसके साथ गाए जाने वाले प्रार्थना गीत भी लोक गीत हैं जिनमें सृष्टि के निर्माण-विकास के साथ साथ दैनिक जीवन की

कहानी है। लाइ हराओबा नृत्य में मणिपुर की मैतै संस्कृति सुरक्षित है। इसमें मणिपुर के जन जीवन का प्रतिविम्ब है, शक्ति है, दुर्बलताएँ हैं, विश्वास हैं, अंधविश्वास हैं और मणिपुर के मैतै कहलाने वाले घाटी निवासियों की उमंग और आनन्द प्रियता है। इसमें मैतै की उत्सव प्रियता नृत्य एवं गान प्रियता स्पष्ट झलकती है। मणिपुरी आदि देवता पाखंबा तथा थाङजिङ आदि देवताओं की इसमें पूजा का विधान रहता है।

लाइ हराओबा नृत्य के सात विभाग हैं— लाइ इकौबा, लाइबौ जगोइ, पानथोइबी जगोइ, लाइरेन मथेक, औगरी हंगेल, थाबल चोङबा तथा नोङगारोल।

## थाबल चोङ्बा

मणिपुरी प्राचीन नृत्य है थाबल चोङबा, अर्थात चाँदनी रात का नृत्य। बसन्त के आगमन के साथ ही युवक-युवतियाँ प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करके अपने भावों की थालब चोङबा नृत्य के द्वारा अभिव्यक्ति करते हैं। फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जब आकाशमें उदित होता है तो युवक एवं युवतियों को कोई अदृश्य शक्ति घरों से खींचकर मानो गाँव के मैदान में ले आती है। नगर की प्रत्येक बस्ती में और प्रत्येक ग्राम में चाँदनी रात में हर लड़के के हाथ में एक लड़की का हाथ होता है और ये लड़के-लड़की एक गोल घेरा बनाते हैं। जो नए नर्तकों के आने के साथ बढ़ता जाता है। इस घेरे के केन्द्र में ढोल या नगारे बजाए जाते हैं। साथ ही गायक भी वहीं खड़े होकर गाते हैं। यह नृत्य रात्रि के अंतिम प्रहर में समाप्त होता है। यह नृत्य १४ दिन तक चलता है। इस नृत्य की प्राचीनता इसके

साथ गाए जाने वाले लोक गीतों से स्वत सिद्ध है। प्रत्येक मणिपुरी यह नृत्य जानता है। इसमें हाथों का उपयोग केवल गोल घेरा बनाने के लिए होता है, नर्तकों के पाँवों का ही मुख्य उपयोग होता है।

थावल चोङ्बा के साथ गाए जाने वाले गीतों में सृष्टि निर्माण, पौराणिक कथाएँ एवं प्रेम कथाएँ रहती हैं। गायक गीत की प्रथम पंक्ति केन्द्र के बीच में से बोलता है और सारे नर्तक उसको दोहराते हैं।

## खम्बा थोइबी नृत्य :

यह दो नर्तकों का नृत्य है— जिस में एक पुरुष एवं एक स्त्री भाग लेती है। खम्बा-थोइबी के अमर प्रेम की कथा इस नृत्य का आधार है। इसमें गति कभी बहुत तीव्र एवं बलवती होती है तो कभी अत्यंत मंद। मोइराङ नगर के प्राचीन मोइराङ वंश से इस नृत्य का संबंध है। थोइबी मोइराङ के राजा की पुत्री थी जो खम्बा नामक सामंत कुमार से प्रेम करती थी। उन्हें शिव एवं पार्वती का अवतार माना जाता है। मोइराङ में थाङजिङ का ऐतिहासिक मन्दिर है, जहाँ समय पर इस नृत्य का आयोजन होता है। खम्बा की भूमिका में युवक एवं थोइबी की भूमिका में कोई युवती भाग लेती है जबकि पेनाखोंङ्बा (एकतारा बजाने वाला) एकतारे पर संगीत प्रस्तुत करता है।

## रास नृत्य

रास नृत्य मणिपुर को वैष्णव संस्कृति की देन है। साथ ही यह मणिपुरी संस्कृति की भारतीय संस्कृति को एक अनुपम

देन भी है। क्योंकि मणिपुर के नर्तकों ने रास नृत्य को शास्त्रीय सिद्धान्तों का आधार दिया तथा इसको अपनी प्रतिभा से निखार कर मणिपुरी शास्त्रीय नृत्य का रूप दे दिया है जो आज विश्व प्रसिद्ध मणिपुरी नृत्य के नाम से जाना जाता है। रास नृत्य का मणिपुर में प्रचलन करने का श्रेय महाराजा राजर्षि भाग्यचंद्र (शासनकाल सन १७६३—९८ ई० तक) को जाता है। उनको भगवान कृष्ण ने स्वप्न में अपनी मूर्ति स्थापित करने की आज्ञा दी थी और मूर्ति स्थापना के पश्चात उन्हें रास लीला के आयोजन की आज्ञा दी। अत: उन्होंने अपनी पुत्री महाराज कुमारी बिम्बावती को राधा का अभिनय करने की प्रेरणा दी। लाङथबाल जिसे अब कांचीपुर कहा जाता है वहाँ महाराजा भाग्यचंद्र ने एक जलाशय बनवाया, एक कृत्रिम नदी बनवाई गई (उस स्थान को महाराज वृन्दावन का रूप देना चाहते थे) और जलाशय के किनारे रास मंडल बनवाया गया जिसमें महाराज कुमारी बिम्बावती मंजुरी ने राधा का अभिनय किया तथा प्रथम रास लीला की गई। बिम्बावती आजन्म कुमारी रहीं और अपने जीवन के अंतिम काल में वे चैतन्य महाप्रभु के जन्म स्थान नवद्वीप में जाकर रही थी। वहीं उनकी मृत्यु भी हुई। मणिपुर में आज उन्हें सिजा लाइओइबी के नाम से जाना जाता है। जिसका अर्थ होता है राजकुमारी जो देवी बन गई या वह राजकुमारी जो भगवान की सेवा में समर्पित हो गई। वे मणिपुर की मीरा थीं।

सिजालाइरोइबी ने मणिपुर में रास नृत्य का आरंभ किया— जो निरन्तर विकसित होता गया और मणिपुरी नृत्य गुरुओं ने अपनी प्रतिभा से उसको आज महान मणिपुरी नृत्य बना दिया है।

रास लीला व नृत्य में भगवान कृष्ण के राधा एवं गोपियों के अलौकिक प्रेम की कथा रहती है जिसका आधार श्रीमद्भागवत का दशम अध्याय है। मणिपुरी हिन्दू राधा कृष्ण के उपासक हैं।

अतः मणिपुर की धरती पर नृत्य फला और फूला इसे राजाओं का संरक्षण भी मिलता रहा। नृत्य प्रिय मणिपुरी लोगों ने अपने लोक नृत्यों एवं रास-नृत्य का ऐसा समिश्रण किया कि अब उनमें भेद कर पाना भी कठिन हो गया। नृत्य की वेश भूषा भी मणिपुरी प्रतिभा की अपनी देन है।

रास नृत्य को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है— एक गोप रास जिसमें कृष्ण अपने गोप सखाओं के साथ गायें चराते हैं और वे ईश्वर अवतार के रूप में चित्रित किए जाते हैं। गोष्टाष्टमी के दिन गोप रास का आयोजन किया जाता है। मणिपुर के प्रत्येक मंदिर में इसका आयोजन होताहै।

दूसरा भेद है— श्री कृष्ण रास लीला। जिसमें श्रीकृष्ण का राधा एवं गोपियों के साथ दिव्य प्रेम की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। इसके चार भाग हैं— महारास, कुंजरास, बसन्तरास एवं नित्यरास। कार्तिक पूर्णिमा को कुंजरास, तो वैशाख पूर्णिमा को बसन्त रास और नित्यरास किसी भी दिन। नित्यरास को दिवारास और निशीरास इन दो भागों में और विभाजित किया जाता है।

मणिपुरी रासलीला में एकाकी नृत्य, द्वैत नृत्य, कृष्ण राधा या राधा वृन्दा, या चन्द्रवली के साथ होते हैं तो समूह नृत्य में कृष्ण अनेक गोपियों के साथ नृत्य करते हैं। नित्य रास के भंगी परें, वृन्दावन परें, खुरुम्बा परें भेद हैं।

## नट संकीर्तन

नट संकीर्तन के दो भाग हैं— संगीत एवं नृत्य। नट संकीर्तन में ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। नृत्य के भी दो

विभाग किए जा सकते हैं— एक पाला चोलम तथा दूसरा पूङ चोलम। पाला चोलम वह नृत्य है जो नट संकीर्तन में भाग लेनेवाले नर्तक करते हैं। पूङ चोलम दूसरा भाग है। जिसे मृदंग बजाने वाले कलाकार प्रस्तुत करते हैं। संगीत में ६४ रसों के सभी पहलू सम्मिलित किए जाते हैं तथा राधा कृष्ण के दिव्य प्रेम का वर्णन होता है और चैतन्य महाप्रभु के गोरव गान भी इस में सम्मिलित होते हैं। नट संकीर्तन मणिपुरी समाज के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का परिचायक है। नट संकीर्तन में संस्कृत के जय देव के पद, विद्यापति के पद, बंगला वैष्णव भाषा के भजन या ब्रजबुली या ब्रज भ षा के पद गाए जाते हैं। नट संकीर्तन भी वैष्णव धर्म के प्रभाव का परिणाम है तथा मृत्यु एवं विवाह संस्कारों पर नट संकीर्तन का आयोजन प्रत्येक घर में किया जाता है। इसके व्यावसायिक गायक होते हैं।

## जन-जातियों के नृत्य

मणिपुर के पर्वतीय भाग में २९ प्रमुख जन-जातियाँ रहती हैं। इनके भी अपने नृत्य हैं। नागा लोगों के युद्ध नृत्य एवं भाला नृत्य तीव्र गीत के साथ रंगबिरंगी पोशोंको से सुसज्जित होते हैं। ये भी मनमोहक तथा उत्साह वर्द्धक होते हैं। नृत्य के साथ तेज ढोल बजाए जाते हैं, शृंगी बजती है और नर्तकों के गान की स्वरलहरी भी उभरती है। नृत्य के साथ उत्सव गीत, प्रेम के गीत, युद्ध गीत का बलिगीत गाए जाते हैं।

नागा, कबुई तथा कूकी नृत्य मणिपुर के प्रसिद्ध नृत्य हैं। बाँस नृत्य कूकी चिन नृत्यों की शृंखला में महत्वपूर्ण नृत्य हैं। इनके नृत्य लोक नृत्यों की श्रेणी में रखे जाते हैं। इन नृत्यों में भावों की अभिव्यक्ति, आँखों भंगिमाओं तथ कमर की गीत

का सर्वथा अभाव होता है। नृत्य में हाथ, हथेलियों, पाँवों की गीत मात्र होती है। प्रत्येक जाति के अपने नृत्य हैं तांखुल और माओ नागाओं का युद्ध नृत्य बहुत ही आकर्षक होता है।

अंत में इतना ही कहना पर्याप्त होता कि मणिपुर के मैतै लोग विशेष कला प्रेमी है और नृत्य संगीत एवं उत्सव प्रियता उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं। मणिपुर के पर्वतीय लोग भी नृत्य गान में गहरी रुचि रखते हैं।

## मणिपुरी भाषा एवं लिपि :

मणिपुरी भाषा चीनी-तिब्बती भाषा परिवार के उप परिवार तिब्बती बर्मी उपवर्ग की एक भाषा है। इस भाषा की अपनी लिपि भी है जिसमें आठवीं शताब्दी में लिखा गया एक ताम्र पत्र उपलब्ध है। इस लिपि का उपयोग १७४० ई० तक होता रहा और इसके बाद बंगला-आसामी लिपि का प्रचलन हो गया। भाषा लिपि से प्राचीन रही ही होगी। अतः मणिपुरी भाषा एवं लिपि भी मणिपुर की उन्नत एवं समृद्ध संस्कृति की प्रतीक हैं।

## मणिपुरी का साहित्य :

मणिपुरी भाषा का साहित्य बहुत ही प्राचीन है और इसका प्राचीन काल ७ वीं शताब्दी के अंत तक माना जाता है। मध्यकाल ८ वीं से १६ वीं शताब्दी माना जाता है और २० वीं शताब्दी से आधुनिक साहित्य का काल माना जाता है। मणिपुरी भाषा का साहित्य बहुत ही समृद्ध है तथा सभी हिन्दू पौराणिक ग्रंथों का मणिपुरी भाषा में अनुवाद उपलब्ध है। साहित्य की

सभी विधाओं पर मणिपुरी में साहित्य उपलब्ध है। बंगला भाषा, हिन्दी व अंग्रेजी ग्रंथों के अनुवाद भी मणिपुरी में उपलब्ध हैं इन सभी भाषाओं के साहित्य का प्रभाव भी मणिपुरी साहित्य पर देखा जा सकता है।

## मणिपुरी रंगमंच :

शुमांग लीला के नाम से मणिपुरी नाट्य रंगमंच की प्राचीन परम्परा है। इसमें किसी रंगमंच की आवश्यक्ता नहीं होती। खुले मैदान में शुमांग लीलाओं का आयोजन किया जाता है। मणिपुरी लोगों की अभिनय कला बहुत उन्नत एवं समृद्ध है। शुमांग लीला मंदिरों में भी की जाती है। प्राचीन शुमांग लीला में धार्मिक या सामाजिक व्यंगात्मक कथानक होता था किन्तु अब आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं पर आधारित होता है। हास्य व्यंग की शुमांग लीला में प्रधानता रहती है। शुमांग लीला को जात्रावली भी कहा जाता है। अब इनके भाव, संवाद एवं अभिनय बहुत ही विकसित हैं और दर्शकों को मंत्र-मुग्ध करने में सफल है। इशै लीला (गीति नाट्य) एवं एपोम (हास्य नाट्य) शुमांग लीला के ही भेद हैं।

मणिपुरी रंगमंच पर बंगला रंगमंच का प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मणिपुरी ड्रामेटिक युनियन १९३१ में स्थापित संस्था है। आर्यन थियेटर, सोसाइटी थियेटर आदि अनेक थियेटर है जिनमें समय-समय पर नाटकों का आयोजन किया जाता है। श्री जी० सी० तोङ्ब्रा के हास्य-व्यंग पूर्ण नाटक बहुत ही उत्तम एवं रंगमच के उपयुक्त नाटक हैं जिनका अकसर अभिनय

होता है। मणिपुर की उन्नत एवं समृद्ध नाटक कला मणिपुर की समृद्धिशाली संस्कृति की प्रतीक है। रंगमंच के क्षेत्र में मणिपुर का एक बिशिष्ट स्थान है।

## मणिपुरी लोगों की खेल प्रियता

मणिपुरी लोग जितना उत्सव प्रिय हैं उतने ही खेल-कूद प्रिय हैं। प्रतिदिन दिन के अंतिम प्रहर में विभिन्न खेलों का आयोजन होता है। प्रत्येक बस्ती, मोहल्ले में खेल होते हैं। खिलाड़ियों के अतिरिक्त दर्शकों की भी भीड़ जमा रहती है। विदेशी खेल जैसे हॉकी, बॉलीबाल फुटबाल, आदि के अतिरिक्त यहाँ के कुछ स्थानीय खेल भी प्रतिदिन खेले जाते हैं।

विश्व प्रसिद्ध अन्तर राष्ट्रीय खेल पोलो का जन्म मणिपुर में हुआ था। सगोल काङ्जै नामक स्थानीय खेल का परिवर्तित रूप ही वर्तमान पोलो है। हियाङ तान्नबा या हैक्रू हिदोङ्बा (नौका दौड़), युबी लाकपी, मुकूना, खोङ काङ्जै (स्थानीय हॉकी) काङ शान्नबा और लामचेल आदि खेल-कूद मणिपुर के स्थानीय खेल हैं, जिनका संबंध त्योहारों से भी है और प्रत्येक त्योहार के बाद ये खेलकूद प्रतियोगिताएँ आयोजित करना अनिवार्य रहा है। बालक से वृद्ध तक न केवल खेल देखते हैं बल्कि खेलते भी हैं। सभी खेल दर्शकों की अपार भीड़ में होते हैं, विभिन्न स्तरों पर प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। परिणाम स्वरूप खिलाड़ियों में प्रतिस्पर्द्धा भाव प्रबल है। राष्ट्रीय एवं अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर मणिपुरी खिलाड़ियों ने ख्याति अर्जित की है। हॉकी में सर्वश्री पी० नीलकमल, के० एस०एच० थोइबा, एल० टिकेन तथा एम कुलजीत मीतै लड़कियों में एन० रोमनी देवी, आर० के० अमूसना,

के० कुंजेश्वरी, एम० सुनता, के० सुशीला केएच० धनपति और एन० सोविता ने, तैराकी में श्री टी० थौबा ने, आरचरी में बसन्ती देवी जेवेलियन थ्रो में यू इबेमनुङशि ने, साइकिल चलाने में एस० मेधा देवी और वाई० सुनीता ने, पावर लिफ्टिंग में एल० अनिता ने तथा आर्म रेसलिंग में मोहम्मद अरासउदिनने देश विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त की।

श्री एन० माइपाक सिंह मिस्टर इंडिया ( १९७० ) तथा मिस्टर एशिया (१९७१), श्री केएच० शामुङौ मिस्टर मसलमेन आफ इंडिया ( १९७१ ), श्री केएच० याइशकुल, श्री टीएच० श्याम तथा श्रीयू० मंगलजाओ जूनियर मिस्टर इंडिया, मिस्टर हिमालय आदि उपाधियाँ जीत चुके हैं। पर्वतीय जन भी अत्यंत खेल प्रिय हैं।

## कला-प्रियता

मैतै समाज एक ओर जहाँ उत्सव प्रिय तथा खेल प्रिय हैं वहीं ये लोग कला प्रिय भी हैं। जीवन के प्रत्येक कार्य में व्यवहार में उनकी कला प्रियता की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। सुरुचि पूर्ण जीवन ही यहाँ की संस्कृति का मेरुदण्ड है। वस्त्र बनाने से लेकर लोहे की या सोने चाँदी की बनाई जाने वाली वस्तुओं के साथ मिट्टी के बर्तनों में भी इनकी उत्कृष्ट कला प्रियता देखी जा सकती है। प्रत्येक वस्तु की बनावट में प्रत्येक युग का कलाकार अपनी प्रतिभा के योग से अपूर्व सौन्दर्य भर देता है। नृत्य, नाटक, संगीत तथा गान में भी उत्तरोत्तर कला निखरती जाती है। कला के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा चलती ही रहती है और इस प्रतिस्पर्धा के परिणाम स्वरूप कला निरन्तर श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होती है। लकड़ी, बाँस, बेंत आदि के बने सामान

से लेकर चित्रकारिता तक में स्थानीय कलाकारों की कलात्मक प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप देखा जा सकता है। कारीगरी एवं कला यहाँ के लोगों को विरासत में मिली है। पाँच वर्ष के बालक-बालिकाएँ साईकिल चलाना सीख लेते हैं तो १०—१२ साल के बच्चे कार से ट्रक तक चला लेते हैं जबकि उनके पाँव भी वहाँ तक नहीं पहुँचते हैं। मैंने ऐसे बच्चो को तकिये आदि लगाकर सीट से स्टेरिंग की दूरी को कम करके गाड़ी चलाते देखा है। मणिपुर के मिस्त्री भी बहुत कुशल होते हैं तथा किसी भी मशीन को जो चाहे पहले देखी भी न हो बना सकते हैं या ठीक कर सकते हैं। भगवान की यहाँ के लोगों को यह अनुपम देन है।

इसी कला प्रियता का परिणाम है कि कला मेतै जीवन का अभिन्न अंग बन गई है। प्रत्येक वस्तु बहुत ही स्वच्छ रहती है, जैसे—साफ धुले प्रेस किए सलीके से पहने गए कपड़े, श्रेष्ठ बाटा के पाँलिश से चमकते जूते, साइकिल से कार तक जो भी सवारी हो चमचमाती मिलेगी। यह कलात्मक दृष्टिकोण का ही परिणाम है।

यहाँ के लोग दाँतों के सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य के लिए भी बहुत प्रसिद्ध हैं। बचपन से ये अपने दाँतों को स्वच्छ रखते हैं अतः प्रत्येक व्यक्ति क दांत मोती जसे चमकदार होते हैं।

यहाँ के लोग सिर के बालों में किसी प्रकार का तेल नहीं लगाते। बालों को देशी जड़ी बूटी, व चावल धोए पानी से धोने का तथा साफ करने का अपना तरीका है। परिणाम स्वरूप यहाँ की स्त्रियों के बाल बहुत लम्बे, सुन्दर एवं चमकदार होते हैं। घुटनों से नीचे तक बालों की लंबाई आम बात है।

बोलचाल-व्यवहार में इनकी सुरुचि देखते ही बनती है। गाली देना बहुत ही बुरा माना जाता है और अशिष्टता एवं असभ्यता मानी जाती है। कितनी भी हाथा-पाई हो जाए, लड़ने वाले लहु-लुहान हो जाएँ परन्तु मुँह से एक भी अपशब्द नहीं निकालते। पुलिसवाले तक इसका अपवाद नहीं हैं। बड़े आदमी से बोलते समय मुँह पर हाथ रखकर बोलना, कभी ऊँची आवाज में न बोलना, किसी के बीच में या सामने निकलने पर झुककर निकलना यहाँ की संस्कृति की विशिष्टता है।

इस सांस्कृतिक झलक से मणिपुर की उन्नत संस्कृति एवं कला का एक सामान्य परिचय प्राप्त हो गया होगा। मणिपुर की संस्कृति अपनी विशिष्टता एवं विभिन्नता के उपरान्त भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है, यह बात भी इस विवेचन से स्पष्ट है।

# मणिपुर के दर्शनीय स्थल

□ डॉ० जगमल सिंह

मणिपुर के प्रति पर्यटकों के आकर्षण के लिए प्रकृति ने ही अनेक अद्‌भुत वस्तुओं की सृष्टि की है। संसार की कुछ दुर्लभ वस्तुएँ प्रकृति ने मणिपुर के शृंगार के लिए संजो कर रखी हैं; जैसे— सिरोइ पर्वत पर पाया जाने वाला सिरोइलीली पुष्प, शंगाई नामक हिरण, लोकताक झील में तैरते द्वीप, यहाँ का स्वास्थ्यवर्द्धक वातानुकूलित जलवायु तथा वर्ष भर शस्य-श्यामल सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य पर्यटकों के लिए खुला हार्दिक निमंत्रण है। मणि के समान उज्ज्वल एवं चमकदार प्रदेश सैलानियों की आँखों को एक दावत का आमंत्रण हैं।

मणिपुर के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक सौन्दर्य को देखकर ही मणिपुर को पृथ्वीपर स्वर्ग का लघु संस्करण कहा गया है। मणिपुर को पूर्वी भारत का कश्मीर या स्वीटज़रलैंड भी कहा जाता है। मणिपुरी भाषा के किसी प्राचीन कवि ने कहा है :

मणिपुर सना-लैमायोल,<br>
चिंगना कोयना पंसावा<br>
हाओना कोयना पंगाकपा।<br>
हे मेरे मणिपुर! मुख्य स्वर्ण भू में सर्वश्रेष्ठ भूमि तुम्हारी<br>
प्रकृति ने स्वयं बनाई पर्वत-पर्वत प्राचीर तुम्हारी<br>
प्रकृति-पुत्र-सजग प्रहरी तुम्हारे!

जो भी कहिए मणिपुर-मणिपुर ही है। यहाँ के पर्यटन स्थलों का अवलोकन किया जाए :

## इम्फाल :

मणिपुर की घाटी के केन्द्र में स्थित मणिपुर का सबसे बड़ा नगर एवं राजधानी है। सांस्कृतिक, व्यापारिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक गति विधियों का यह प्राचीन केन्द्र है। युमफाल (युम-घर तथा फाल =बनाना) शब्द से इम्फाल बना है, अर्थात जलप्लावन के पश्चात सर्वप्रथम यहीं घर बनाए गए थे। समुद्र तल से ७०५ मीटर की ऊँचाई पर स्थित इस नगर की लगभग डेढ़ लाख जनसंख्या है। नगर १७.४८ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। नगर के बीचों-बीच ख्वाइरमबन्द बाजार है, जो संभवत देश का सबसे बड़ा महिला बाजार है, जिसमें केवल महिलाएँ ही कपड़े, सब्जी मछली आदि बेचते हुए देखी जा सकती हैं। व्यापार के अतिरिक्त यह भीड़ भरा कोलाहलपूर्ण रंग-बिरंगा बाजार अपनी अलग पहचान रखता है। थांगल बाजार, वीर टिकेन्द्रजीत रोड के दोनों ओर का बाजार तथा पायना बाजार इम्फाल के प्रमुख बाजार हैं, जहाँ मणिपुरी वस्त्र एवं हस्तकला की सामग्री मिलती हैं। यहाँ के बाजार में भीड़ लगी रहती है। विभिन्न प्रकार के वाहनों की संख्या भी बहुत अधिक है। इम्फाल नगर में निम्नलिखित स्थान दर्शनीय हैं :

## श्री श्री गोविन्द जी का मंदिर :

राजबाड़ी के निकट ही दो स्वर्ण गुम्बद-युक्त यह मन्दिर वैष्णव संस्कृति का जीता जागता प्रतीक है। यहाँ पर होली, नट, बसंत आदि रास नृत्यों का आयोजन होता रहता है। मन्दिर के पास ही राज-निवास है, जो राजबाड़ी के नाम से विख्यात है तथा यहीं आकशवाणी केन्द्र भी है। दो गुम्बदवाले मन्दिर बहुत कम पाए जाते हैं। मन्दिर के तीन कमरे हैं जिनमें बीचवाले में श्रीकृष्ण एवं रसेश्वरी तथा बगल के कमरों में राम, कृष्ण और जगन्नाथ स्वामी

की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के सामने आंगन के पार बहुत बड़ा मण्डप बना है, जिसमें हजारों भक्त एक ही समय बैठ सकते हैं।

## महाबली ठाकुर का मन्दिर :

हनुमान जी का यह प्राचीन मन्दिर इम्फाल नदी के तट पर बना है, जहाँ प्रत्येक मंगलबार एवं शनिवार को भक्तजनों की भीड़ लगती है। हनुमान-जयन्ती के दिन यहाँ से प्रतिबर्ष रथ-यात्रा निकाली जाती है। मणिपुर में बन्दर केवल यहीं पाए जाते हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि यहीं पर कभी मोंगबाहनबा का मंदिर था।

## श्री श्रीविजय गोविन्द का मन्दिर :

मंत्री मयुम लैकाई में स्थित मंत्री अनन्तशाह के द्वारा निर्मित श्री श्रीविजय गोविन्द जी का मन्दिर भी दर्शनीय स्थल है। यहाँ होली के बाद हलंकार के दिन रास नृत्य होता है। कामना से लाए गए कटहल के वृक्ष के दूसरे भाग से बनी मूर्ति की यहाँ स्थापना की गई थी। हलंकार के दिन की रास नृत्य की छवि कवियों द्वारा वर्णित वृन्दावन की छवि उपस्थित करती है। कृष्ण गोप मण्डली के साथ एक ओर तो दुसरी ओर राधा तथा गोपियाँ और तब पिचकारियों से रंग की बौछार रास में भाग लेनेवालों की परम्परागत वेश-भूषा तथा सजावट दर्शनीय होती है। इसी मन्दिर की परिखा में हियाङ तान्नबा या नौका दौड़ प्रतियोगिता होती है।

## युद्ध सैनिक स्मारक :

डी० एम० कॉलेज के सामने द्वितीय विश्व युद्ध में इस क्षेत्र में मारे गए विदेशी ईसाई सैनिकों की स्मृति में एक स्मारक बना

हुआ है। कुछ ही दूर इम्फाल उखरूल मार्ग पर भारतीय सैनिकों की याद में भी इसी तरह का एक स्मारक है। इन स्मारकों के रख-रखाव का कार्य कॉमन वेल्थ वार ग्रेव्ज कमीशन के द्वारा किया जाता है। ये स्मारक अपनी एकरूपता एवं पवित्रता के कारण दर्शनीय हैं।

### खोंगहामपाट पौधशाला :

इम्फाल-डीमापुर मार्ग पर इम्फाल से ७ कि० मि० उत्तर में एक पौधशाला है, जिसकी देखभाल मणिपुर सरकार का वन विभाग करता है। यहाँ ११० विभिन्न जातियों के वृक्ष लगाए हैं। यह पौधशाला दर्शनीय एवं सुरम्य स्थल है।

### काङ्ला :

कहते है जल-प्लाबन के पश्चात काङ्ला जो सबसे ऊँचा स्थान है सूखा रह गया था या सबसे पहले सूख गया था। काङ्ला मणिपुर का सबसे पवित्र एवं पूजनीय स्थान माना जाता है। जहाँ भगवान शिव ने स्वंय पाखंङ्बा को अपने उत्तराधिकार के रूप में राजसिंहासन दिया था। पाखङ्बा के बड़े भाई को सनामही गृहदेवता के रूप में पूजे जाने का आशीर्वाद दिया। अतः काङ्ला पाखङ्बा के समय से ही मणिपुर की राजधानी है। पूर्व-ब्रिटिश-काल तक काङ्ला मणिपुर के महाराजाओं की राजधानी रही है। आज भी यहाँ प्राचीन राज प्रासादों के अवशेष देखे जा सकते हैं। यहाँ प्राचीन महाराजाओं के नाम से बने स्मारक भी हैं।

संप्रति आसाम राइफल्स चतुर्थ वाहिनी के परिसर के मध्य यह स्थान है, जिसके तीन ओर परिखा बना दी गई है। इस परिखा में समय-समय पर नाव तथा तैराकी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।

## जवाहरलाल नेहरू मणिपुरी डांस एकेडेमी :

इम्फाल विश्वप्रसिद्ध मणिपुरी नृत्य का केन्द्र है और नेहरू डाँस एकेडेमी में इस नृत्य की व्यवस्थित कक्षाएँ होती हैं। देशी अथवा विदेशी अतिथि जब मणिपुर में आते है तो यहाँ नृत्य अवश्य देखते हैं।

## जन्तुघर :

इम्फाल नगर के पश्चिम में ६ कि० मि० की दूरी पर एक शानदार बगीचे में जन्तुघर बना है। इसमें ससार के विभिन्न भागों के जन्तु देखे जा सकते हैं किन्तु इसका प्रमुख आकर्षण है मणिपुर का संङाई हिरण।

## पोलो-ग्राउण्ड :

अंग्रेजों के जमाने में यहाँ पोलो खेला जाता था और आज भी यहाँ विभिन्न खेल खेले जाते हैं। किन्तु इस मैदान का ऐतिहासिक महत्व है। १३ अगस्त १८६१ के दिन यहाँ वीर टिकेन्द्रजीत तथा जनरल थाङगाल को हजारों लोगों की उपस्थिति में फाँसी पर लटकाया था। अतः यहाँ एक ऊँची शहीद मीनार उन स्वतंत्रता सैनानियों की स्मृति में बनवाई गई है। इसके पास ही संग्रहालय या म्युजियम है, यहाँ प्राचीन वस्तुओं का संग्रह है।

## लम्फेल-पात :

लांगोल चिंग अर्थात झाड़ियों से भरा पर्वत और उसके नीचे थी कभी लम्फेल नामक पात ( झील ), इस झील का कोम्बीरै नामक पुष्प बहुत प्रसिद्ध था। अब झील के स्थान पर सरकारी कार्यालय व सरकारी कर्मचारियों के निवास स्थान बन गए हैं।

लम्फेलपात के निकट है सगोल ( संगोन ) बन्द अर्थात घोड़ा बांधने वाला स्थान कहते हैं। महाभारत युद्ध के समाप्त होने पर पांडवों का राजसूय यज्ञ का घोड़ा यहाँ पहुँचा तो ब्रभ्रुवाहन ने उस यहाँ बांध दिया था और उसको छुड़वाने के लिए ब्रभ्रुवाहन तथा अर्जुन के बीच ताकयेल स्थान पर युद्ध हुआ था। किन्तु कुछ विद्वान इस घटना को कपोल कल्पित एवं असत्य मानते हैं।

लांगोल चिंग के पास ही है "मंङारक फानबी" जहाँ कभी आत्मघात करनेवालों की लाशें फेंकी जाती थीं।

## पुरूक-सौबी :

कोङ्बा बस्ती के निकट पुःक सौबी नामक स्थान है जहाँ फव्वारे की भाँति भूमि से प्रकृतिरूप से जलधारा निकलती है। इस स्थान के साथ कई किंवदंतियाँ जुड़ी हैं। यह भी कहा जाता है कि इसके जल में स्नान करने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

## काइना :

इम्फाल के उत्तर पूर्व में २१ कि० मि० दूरी पर स्थित एक ऐतिहासिक पर्वतीय स्थल है। महाराजा भाग्यचन्द्र ने श्री श्री गोविन्द जी की आज्ञानुसार इसी स्थान से कटहल का वृक्ष कटवाकर उससे श्री श्री गोविन्दजी के चार विग्रह बनवाए थे। यहाँ एक मन्दिर एवं विश्राम गृह है। आसपास की पहाड़ियों पर अनन्नास के पौधे लगाने से इसके सौन्दर्य चार चाँद लग गए हैं।

## कौब्रु पर्वत :

कहते हैं जलप्लावन के समय मणिपुर निवासी कौब्रु पर्वत पर चढ़ गए थे और जल सूखने पर फिर उत्तर आए थे। इस प्रकार कौब्रु पर्वत सबसे पूजनीय एवं पवित्र स्थान माना जाता है।

इसका पौराणिक महत्व है। प्रतिवर्ष नववर्ष के उपलक्ष में धार्मिक प्रवृति के लोग कौब्रु पर्वत पर ५—७ घण्टे की दुर्गम चढ़ाई चढ़ते है। कहा जाता है कि शिखर पर पहुँचकर मनुष्य अपनी थकान भूल जाता है तथा उसको आत्मिक शांति प्राप्त होती है। शिखर पर एक लम्बी सी झील है जिसमें जल के अनेक जीव जन्तु पाए जाते हैं। वहाँ लकड़ी से बने दो कमरे हैं जहाँ लोग ठहर सकते हैं। पर्वत पर स्त्री-पुरुष का आलिंगन वर्जित है। कहते हैं यहाँ आलिंगन करनेवाले युगल का अनिष्ट होता है।

## लांथबान कुंज (कांचीपुर)

भारत बर्मा मार्ग पर ८ कि० मि० दूरी पर लांथबाल नामक स्थान है! महाराज भाग्यचन्द्र ने लांथबाल की पहाड़ी पर एक विश्रामगृह बनवाया था। वे इसको एक कुंज का रूप देना चाहते थे। अतः एक बड़ा जलाशय बनवाया। जिसके किनारे कटहल के वृक्ष से बनी कृष्ण की मूर्ति के पास उनकी पुत्री सिजलाइरोइबी की राधा के रूप बैठाया गया। यहीं प्रथम बार उसने रास नृत्य किया तथा आजन्म कुमारी रही। यह भी कहा जाता है कि गरीबनिवाज नामक मणिपुर के महाराजा ने सर्वप्रथम यहाँ विश्राम करने हेतु एक कुटिया बनाई थी। भाग्यचन्द्र के बाद महाराज गम्भीर सिंह ने भी इसके विकास का प्रयत्न किया था। आज भी इसकी पहाड़ी पर भग्न अवशेष देखे जा सकते हैं। अब पहाड़ी के नीच की समतल भूमि पर मणिपुर विश्वविद्यालय के भवन बन गए हैं।

## वाइथौ :

वाइथौ झील के मध्य एक सुन्दर विश्रामगृह बना हुआ है। झील के चारों तरफ का प्राकृतिक सौन्दर्य मनमोहक हैं। यहाँ अनन्नास बहुत प्रसिद्ध हैं। वाइथौ पात इम्फाल से १६ कि० मि०

आधुनिक काल के भारतीय इतिहास में भी इस का गौरव पूर्ण स्थान है क्योंकि १४ अप्रैल १९४४ के दिन आजाद हिन्द फौज ने मोइरांग पर कब्जा कर लिया था। यह अब पुनीत भारत भूमि है जिसे सर्वप्रथम स्वतंत्र होने का गौरव प्राप्त है। मोइरांग का डाकबंगला आजाद हिन्द फौज का मुख्यालय बना था और इस पर गौरव से तिरंगा झण्डा पहराया गया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यहाँ आज़ाद हिन्द फौज का एक स्मारक बनाया जा रहा था जो आज भी अधूरा पड़ा हैं किन्तु इसके एक भ ग में संग्रहालय है जहाँ आजाद हिन्द फौज के दुर्लभ चित्र, वेश-भूषा तथा हथियार सुरक्षित है तथा एक छोटा-सा पुस्तकालय भी वहाँ है। स्मारक भवन के सामने एक छोट-सा बगीचा है जिसके एक ओर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की कांस्य प्रतिमा है तो दूसरी ओर नेताजी द्वारा १९४५ ई० में सिंगापुर में बनवाए गए स्तूप की प्रतिकृति है।

मोइराङ लगभग एक हजार वर्ष पूर्व मोइराङ राजाओं की राजधानी थी जिसकी क्रोड़ में मणिपुरी सभ्यता, संस्कृति. कला एवं धर्म का विकास हुआ।

### लोकताक़ झील :

उत्तर भारत की मीठे पानी की यह सबसे बड़ी झील है। वर्षा ऋतु में इस झील का क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाता है और वर्षा ऋतु के बाद इसका जल सिमटता जाता है और जल क्षेत्र कम रह जाता है। लोकताक झील मणिपुर की प्रकृति की अनुपम भेंट हैं। इसमें विभिन्न प्रकार की जल-वनस्पति पाई जाती हैं। प्रत्येक ऋतु में लोकताक में भिन्न-भिन्न प्रकार के पुष्प खिलते हैं

जो इसकी शोभा को और भी बढ़ा देते हैं। इस जल-वनस्पति से फल-फूल प्राप्त होते हैं जो सब्जी, तरकारी तथा चटनी बनाने के काम आते हैं। झील में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं।

लोकताक झील के तैरते द्वीप संसार की अनुपम वस्तु है। थाङगा और कराङ नामक दो द्वीप झील के मध्य स्थित हैं, जहाँ सुन्दर बगीचे हैं और इन द्वीपोंसे दर्शक सुरम्य प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर सकते हैं। चारों ओर के पर्वतों तथा वनस्पति का चल-जल प्रतिबिम्ब इन द्वीपों में बैठकर देखा जा सकता है। झील के बीच एक छोटे से पर्वत पर सेन्द्रा नामक पर्यटक विश्राम-गृह बना हुआ है, जिसके चारों ओर चंदन के वृक्ष लगे हैं। यहाँ पर्यटकों के लिए नौका-विहार की सुविधा भी उपलब्ध है। सेन्दरा से क्षितिज का आलिंगन करती अपार जल राशी, उसमें तैरती छोटी-छोटी नावें, नावों के द्वारा झील के वक्षस्थल को चीरकर आगे बढ़ने पर जल में बनते भंवर तैरते द्वीप, रंग बिरंगी जल-वनस्पति, झील के किनारे के हरे-भरे खेत एवं घास के मैदान, शरद ऋतु में साइबेरिया से उड़कर आनेवाले पक्षियों की गगन में कलरव करती पंक्तियाँ एवं झील के जल में तैरता पर्वतीय प्रतिबिम्ब लुभावनी एवं मनमोहिनी दृश्यावली है। नाविकों का पतवारों के साथ उभरता स्वर और उसकी प्रतिध्वनि इस संपूर्ण वातावरण को सजीव बना देते हैं।

## कैबुल लमजाओ :

कैबुल लमजाओ मणिपुर का राष्ट्रीय अभयारण्य है और एक दलदली द्वीप है जिस पर सरकंडों का घना जंगल है। संसार का एक विशिष्ट एवं दुर्लभ जाति का बारहसिंग के सींगों

दूरी पर स्थित है। यह मछली पकड़ने का महत्वपूर्ण स्थान है और इस झील में पाई जाने वाली ङातोन मछली बहुत स्वादिष्ट होती है।

## खूनी पर्वत :

टिड्डिम मार्ग पर इम्फाल से १६ कि० मि० की दूरी पर यह एक छोटा सा पर्वत है जिसे लोकपा चिंग भी कहा जाता है। इस स्थान पर द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानी एवं ब्रिटिश सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ था और बहुत से सैनिक मारे गए थे, अतः इस पर्वत को लोग खूनी पर्वत कहते हैं।

## बिशेनपुर :

इसका प्राचीन नाम लमांगथोंग ( लमहाँग = मैदान का, थोंग = दरवाजा ) बताते हैं, तो कुछ लोग लमलोंग ( एक जाति ) थोंग कहते हैं। मणिपुर का यह प्राचीन नगर टिड्डिम मार्ग पर ही इम्फाल से २७ कि० मि० दूरी पर पर्वत श्रृंखला के चरणों में बसा है। यहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी का एक विष्णु मन्दिर है जो विशिष्ट प्रकार की छोटी ईंटों से बना हुआ है। इन ईंटों को चीन की पद्धति से बनाई गई इंटें कहा जाता है।

## निंथौखोंग :

लोकताक प्रोजेक्ट के पास की एक छोटा सा गाँव है निंथौखोंग जहाँ श्री गोपिनाथ जी का मन्दिर बना हुआ है। यहाँ कायना के कटहल वृक्ष के तीसरे अंश की मूर्ति की स्थापना की हुई है। मन्दिर के साथ मन्दिर के प्रांगण में समय-समय पर आयोजित किए जाने वाले नृत्य भी दर्शनीय हैं।

## लोकताक प्रोजेक्ट :

इम्फाल से टिड्डिम मार्ग पर ३६ कि० मि० की दूरी पर निंथौखोंग नामक गाँव के पास बहुमुखी परियोजना का निर्माण किया गया है। इसकी दो कि० मि० लम्बी सुरंग देखने योग्य है। इस परियोजना के द्वारा जल विद्युत उत्पन्न की जा रही है, सिंचाई की की सुविधएँ उपलब्ध हो सकी हैं, बाढ़ नियंत्रण कर सके है, कई वर्गमील भूमि को कृष्टि योग्य बनाया जा सका है। लेमताक जल विद्युत घर तथा वहाँ का विश्राम गृह एवं पर्वत की गोद में बस्ती पर्यटकों के लिए आकर्षण केन्द्र है।

## मोइरांग :

इम्फाल से दक्षिण में ४५ कि० मि० की दूरी पर लोकताक झील के किनारे मोइराङ नामक पौराणिक एवं ऐतिहासिक नगर है, जो स्वतंत्रता संग्राम का पुनीत तीर्थ स्थल है। यह मणिपुर का प्राचीन पौराणिक नगर है जहाँ खम्बा थोइबी नामक पौराणिक प्रेमी-युगल का जन्म हुआ था। यहाँ थाङजिङ का मन्दिर है जिसके आँगन में लाइ हराओबा नृत्य होता है। थाङजिङ नामक पौराणिक देवता का निवास-स्थान भी मोइरांग माना जाता हैं, जो मणिपुर के अत्यंत आदरणीय एवं पूजनीय देवता है। उनके सम्मान में प्रत्येक मई महीने में पारम्परिक नृत्य 'मोइरांग लाइ हराओब' का आयोजन किया जाता है। इस उत्सव के अवसर पर शत-शत नर-नारी थाङजिङ देवता के सम्मान में गीत गाते हैं तथा नृत्य में प्राचीन शानदार पोशाक पहन कर भाग लेते हैं, जिससे नृत्य एवं मधुर संगीत का आनन्द बहुत बढ़ जाते हैं। मणिपुर की समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता को मोइरांग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीनकाल में यह नगर सभ्यता, संस्कृति, कला एवं राजनीति का प्रमुख केन्द्र था।

जैसे सीं ंगवाला "शंङाई" नामक हिरण जो प्रकृति की अनुपम-कृति है, यहाँ सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त जंगली सुअर, चीते आदि वन्य प्राणी भी देखे जा सकते हैं। पर्यटकों के लिए सरकण्डे वनों से आच्छादित यह दलदली द्वीप प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है।

## चुराचाँदपुर :

इम्फाल से टिड्डिम मार्ग पर ६५ कि० मि० की दूरी पर मणिपुर के भूतपूर्व महाराजा के नाम से बसाया गया पर्वतीय जन-जातियों कस्बा का है। यह कस्बा दक्षिण जिले का मुख्यालय है और अनागा-जनजातियों की संस्कृति एवं सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है।

## माओ :

राष्ट्रीय मार्ग ३९ पर इम्फाल डीमापुर के बीचों बीच मणिपुर और नागालैण्ड की सीमा पर समुद्रतल से १७८८ मीटर की ऊँचाई पर माओ नामक कस्बा बसा है, जो राष्ट्रीय मार्ग पर सर्वोच्च स्थान है। अपने परम्परागत हथियारों से सजे लम्बे कद के हृष्ट-पुष्ट माओ जाति के नागा यहाँ देखे जा सकते हैं। माओ जाति की रंग-बिरंगे वस्त्रों में सजी सुन्दर महिलाएँ भी दर्शनीय हैं। ऊँचाई के कारण यह स्थान सदा ठण्डा रहता है।

## काङ्चूप :

इम्फाल तमेंगलौंग मार्ग पर इम्फाल के पश्चिम में १६ कि०मि० की दूरी पर स्थित पर्वतीय दर्शनीय स्थल है। यहाँ पर लोग पिकनिक करने जाते हैं।

### तमेंलोंग :

यह तमेंलोंग जिले का मुख्यालय है। यह ऊँचा पर्वतीय स्थल है यहाँ बहुत मीठा संतरा पैदा होता है। यहाँ पर रोंगमई तथा कबुई जन जाति के लोग रहते हैं।

### तेंगनौपल :

भारत-बर्मा मार्ग का सर्वोच्च पर्वतीय स्थल है, जहाँ से मणिपुर घाटी का संपूर्ण दृश्य देखा जा सकता है। तेङ्नौपल इम्फाल से ६६ कि० मि० दक्षिण में स्थित है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है जहाँ तेज हवा चलती रहती है। तेङ्नौपल का अर्थ काँटेदार पौधा होता है।

### पल्लेल :

पल अर्थात दीवार और लेल का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। यह इम्फाल से ५५ कि० मि० की दूरी पर स्थित है और मणिपुर की घाटी का दक्षिण दिशा का अंतिम ग्राम है। यहाँ से पर्वत शृंखलाएँ आरंभ होती हैं। यह भारत की वह पुनीत भूमि है जिस पर कर्नल लक्ष्मीनाथन के सेनापतित्व में आजाद हिन्द फौज ने अधिकार कर के स्वतंत्र करा दिया था।

### मोरे :

मणिपुर के दक्षिण पूर्व में इम्फाल से ११० कि० मि० की दूरी पर बर्मा की सीमा पर बसा छोटा सा गाँव है। मोरे से कुछ दूर बर्मा की सीमा में टामू नामक कस्बा है, जहाँ बर्मा की सभ्यता एवं संस्कृति देखी जा सकती है। ऊँचे मचानों पर बने मकान, बौद्ध मठ तथा वृक्षों का आलिंगन करती लताएँ बर्मा की विभिन्नता को प्रकट करती हैं।

सुगनू :

दक्षिण के मैदान के अंतिम छोर पर स्थित सुगनू नामक गाँव बहुत ही सुन्दर है। इसमें एक प्राचीन मन्दिर है। हाल ही में अनानास व ओक लगाने से इसका प्राकृतिक सौन्दर्य और बढ़ गया है।

खोपुम :

खौपुम में पर्वत पर बने विश्राम गृह से छोटी सी खौपुम घाटी का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। लगभग २१ वर्ग कि०मि० की यह चपटी घाटी है। इसकी समुद्रतल से ऊँचाई ३६२ मीटर है। यह पुरानी कछार सड़क पर स्थित है। इससे कुछ ही दूरी पर एक सुन्दर जल प्रपात है। प्रकृति का आनंद लेने के लिए यह एक आदर्श स्थान है।

खोङजोम :

भारत-बर्मा मार्ग पर इम्फाल से ३७ कि० मि० की दूरी पर स्थित वह ऐतिहासिक स्थल है जहाँ मेजर जनरल व्रजवासी पावना के सेनापतित्व में मणिपुरी सैनिकों ने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए २३ अप्रैल १८६१ ई० के दिन अपने प्राणों की बाजी लगा दी। जब तक उनका अंतिम सैनिक जीवित था अंग्रेजों की बर्मा से आने वाली अंग्रेज सेना को रोके रहा। लेफ्टीनेन्ट ग्राण्ट जो इस युद्ध में स्वयं घायल हुआ था, ने भी अपने शत्रु के साहस एवं शौर्य की प्रशंसा की है। इस पर्वत के नीचे जहाँ युद्ध हुआ था अब एक भव्य स्मारक बनाया गया है और प्रत्येक २३ अप्रैल खोंगजोम दिनके रूप में मनाया जाता है और यहाँ लोग स्वतंत्रता प्रेमियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने आते हैं। यद्यपि इन

वीरों को सफलता नहीं मिल सकी किन्तु उनके स्वाधीनता प्रेम की याद यह ऐतिहासिक स्थल युगों-युगों तक दिलाता रहेगा।

## उखरूल :

इम्फाल के पूर्व में समुद्र तल से १६०० मीटर को ऊँचाई तथा ८३ कि० मि० की दूरी पर स्थित सुन्दर पर्वतीय छोटा सा कस्बा है जो पूर्वी जिले का मुखयालय भी है। इसकी ऊँचाई शिमला जितनी है और बहुत ठंडा स्थान है। यहाँ सदा मेघ घटाएँ छाई रहती हैं और सूरज से आँख मिचौनी खेला करती हैं। यह तांखुल नामक योद्धा जनजाति का केन्द्र स्थान है।

उखरूल के पूर्व में २५६८ मीटर की ऊँचाई पर सिरोइ पर्वत है, जहाँ संसार का एक दुर्लभ जाति का पुष्प सिरोइ लीली खिलता है। प्रकृति ने मानो मणिपुर के उन्नत भाल पर अपने ही हाथों सिरोइ लीली के रूप में कुम-कुम बिन्दी लगा दी हो। उखरूल से १० कि० मि० दूरी पर दर्शनीय पर्वत कन्दराएँ हैं।

## चसाद

भारत बर्मा सीमा पर बसा चसाद एक सुन्दर पर्वतीय ग्राम है। जहाँ से भारत की ओर देखने से देवदार के सघन वृक्ष कुंजों की क्रोड़ में बसे गाँव नवजात पक्षी-शावक से दृष्टिगोचर होते हैं, तो बर्मा की ओर देखने पर चिंदविन नदी की उज्ज्वल जलधारा दिखाई देती है। सूर्योदय के पूर्व की अरुणिमा बिखरने के साथ ही पर्वतों के मध्य स्थित गहरी घाटियों, दुग्ध धवल जलधारा, कल-कल निनाद करते जलस्रोत, वर्षा के जल से सद्यस्नात पर्वत मालाएं, सीढ़ीदार खेत, उनमें लहराते धान के पौधे और उनमें बहता जल अभूतपूर्व दृश्यावली है। चसाद का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है।

# मणिपुरी नृत्य

□डॉ० जवाहर सिंह

भारत की प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य-शैलियों में मणिपुरी नृत्य शैली का एक विशिष्ट स्थान है। मणिपुरी नृत्य अपनी कलात्मकता विशिष्ट भाव-भंगिमाओं, अभिनेयता और सूक्ष्म कलात्मक भाव-संप्रेषणीयता के कारण आज देश और विदेशों में विपुल ख्याति पा चुका है। मणिपुरी नृत्य की एक सुदीर्घ परम्परा है और यह परम्परा जड़ या रूढ़ नहीं, विकासशील परम्परा रही है। वर्तमान मणिपुरी नृत्य शैली की विशिष्टता और विश्वव्यापी प्रतिष्ठा के पीछे यहाँ के सैकड़ों कला-समर्पित गुरुओं और हजारों कलाकारों की निष्ठा, त्याग और अभ्यास का इतिहास छिपा हुआ है।

मणिपुर में नृत्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना स्वयं में मणिपुर का इतिहास। ऐसा लगता है, नृत्य, नाट्य और संगीत के तत्त्व मणिपुर वासियों की हर साँस में प्रवाहित होते है— इनके रक्त में घुलमिल गये हैं। नृत्य यहाँ के निवासियों के लिए मात्र कला या मनोविनोद की वस्तु नहीं, जीवन की अनिवार्यता है उपासना की विधि है - जीने की कला है — आध्यात्मिक चिंतन का सोपान है। इसीलिए यहाँ के हर पर्व-त्योहार, सामाजिक संस्कार धार्मिक अनुष्ठान तथा सांस्कृतिक समारोहों में नृत्य एक अपरिहार्य कार्य बन गया है।

यद्यपि ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व के मणिपुर का इतिहास अब भी अतीत के महान्धकार में खोया पड़ा है किन्तु यहाँ के लोक-नृत्यों के संबन्ध में आज भी अनेक मिथक, जनश्रुतियाँ और

लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। वास्तव में इन लोक-नृत्यों के माध्यम से ही मणिपुर ने अपनी विशिष्ट परम्पराओं, कलात्मक कल्पनाओं, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों तथा धार्मिक विश्वासों को आज तक अक्षुण्ण और सुरक्षित रखा है।

इतिहास के विद्वानों के लिए आज यह बात अवश्य विवादास्पद बना गयी है कि वर्तमान मणिपुर वही महाभारत कालीन चित्रांगदा और बभ्रुवाहन वाला मणिपुर है या कोई अन्य पर प्राचीन ग्रंथों में जिस 'गंधर्व देश' की चर्चा हुई है, वह यहाँ के निवासियों की संगीत-नृत्यप्रियता को देखते हुए, असंगत नहीं लगती।

मणिपुरी नृत्य-शैली के अंतर्गत दो प्रसिद्ध और प्राचीन नृत्य हैं— 'लाइ-हराओबा नृत्य और' रासलीला। 'लाइ-हराओबा' यहाँ का परम्परागत और प्राचीनतम लोक-नृत्य है, जिस में आदि-पुरुष और प्रकृति द्वारा सृष्टि की रचना और इसके विकास की कहानी को मणिपुर की पौराणिक कथाओं के आधार पर प्रदर्शित किया जाता है। रास नृत्य ( रासलीला ) का प्रारम्भ यहाँ परवर्ती काल में ( १४ वीं—१५ वीं शताब्दी ) हुआ।

## लाइ-हराओबा नृत्य :

लाइ-हराओबा नृत्य मणिपुर का वह पारंपरिक लोक नृत्य है जिस में यहाँ के मूलनिवासियों के आभ्यंतर धार्मिक विश्वासों, आध्यात्मिक चिंतन, सृष्टि के निर्माण और विकास संबन्धी मौलिक कल्पना तथा जन जातीय कला एवं संस्कृति के बहुत से तत्त्व अब भी वर्तमान हैं। इस लोक-नृत्य में लोक-कथाओं, मिथकों, जन श्रुतियाँ, पौराणिक उपाख्यानों और ऐतिहासिकता का कुछ ऐसा कलात्मक समन्वय हुआ है कि यह अकेला नृत्य ही इस प्रदेश

के निवासियों के समग्र चिंतन, कलात्मक सौंदर्य-बोध, कलागत मान्यताओं, सामाजिक संरचना, जीवन-पद्धति, नैतिक-मूल्यों तथा उर्वर कल्पना-शक्ति और कलात्मक भावाभिव्यक्ति के मानक प्रतीकों को उन की समग्रता एवं सम्पूर्णता में उद्‌घाटित करने में सक्षम है।

मणिपुरी भाषा में 'लाइ' का अर्थ होता है— देवता, जो सम्भवतः 'लिंग' शब्द का ही अपभ्रंश है और जिसका प्रयोग 'शिव' के प्रतीकार्थ रूप में होता है। 'हराओबा' शब्द 'आनन्द' 'खुशी' 'प्रमोद' आदि का अर्थ व्यंजित करता है। अतः 'लाइ-हराओबा' का शाब्दिक अर्थ 'देवताओं का प्रमोद' या 'देवताओं का आनन्दोत्सव' है। 'लाइ-हराओबा' नृत्य की संरचनात्मक प्रकृति आधुनिक 'नृत्य-नाटक' ( डान्स-ड्रामा ) की तरह की है जिसका अभिनय पार्श्व-संगीत के आधार पर होता है।

स्थानीय विशिष्टताओं के फलस्वरूप इस लोक-नृत्य की तीन अलग-अलग शैलियाँ मणिपुर में प्रचलित हैं— (क) कङ्लै, (ख) मोइरांग, (ग) चकपा। वास्तव में ये तीन अलग-अलग शैलियाँ नहीं, बल्कि इस नृत्य के तीन अलग-अलग स्कूल हैं या अलग-अलग स्थानों पर विकसित परम्पराएँ हैं जो मूलतः एक होते हुए भी स्थानीय रंग के कारण एक-दूसरे से थोड़ी भिन्नता का बोध कराते हैं।

सभी कलाओं की मूल प्रेरणा का स्रोत मानव की सौंदर्य चेतना है और इस सौंदर्य के अन्यतम तथा सूक्ष्मतम रूप की कल्पना मनुष्य सदा से किसी अदृश्य अभौतिक शक्ति और सत्ता के अस्तित्व में करता आया है और उसके प्रकट विस्तार को प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य में देखता आया है। इसीलिए सभी

कलाएँ किसी न किसी रूप में मानव के गहनतम आध्यात्मिक चिंतन और उसकी धार्मिक भावनाओं से गहरे स्तर पर संबद्ध रही हैं। हमारे तत्वदर्शी ऋषि-मुनियों ने भी संगीत ( गीत, वाद्य, नृत्य) का मूल 'नाद् ( ध्वनि ) को माना है और 'नाद' को स्वयं ब्रह्म कहा है-- 'नादब्रह्म'। अतः सभी भारतीय शास्त्रीय नृत्यों का मूल उद्गम नटराज के ब्रह्माण्ड-रचना और सृष्टि विनाश करने वाले आदि नृत्य— लास्य तथा ताण्डव ही समझे जाते हैं और नाद-ब्रह्म की उत्पति भी इन्हीं के डमरू की ध्वनि से मानी जाती है।

कुछ विद्वानों की ऐसी धारणा है कि पूर्वकाल में मणिपुर शैव धर्म की तांत्रिक शाखा से किसी न किसी रूप में प्रभावित रहा है। आज भी मणिपुर के विभिन्न भागों में पहाड़ों पर स्थापित शिवलिंग का पाया जाना इस धारणा को पुष्ट करता है। 'लाइ-हराओबा' नृत्य में 'नोङपोक निंथौ' और ' नथोइबी' ( परवतीकाल में शिब-पार्वती के अवतार माने जानेवाले ) की दिव्य और आह्-लादक प्रणय-गाथा भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है।

मणिपुर में लाइ-हराओबा नृत्योत्सव का प्रारम्भ होली के वाद होता है और विशेष-विशेष तिथियों को अलग-अलग स्थानों पर आयोजित होता रहता है। सामान्यतः ये आयोजन वैशाख तक होते हैं। चूँकि लाइ-हराओबा एक नृत्य के साथ-साथ एक धार्मिक अनुष्ठान भी है, इसलिए इस नृत्य के लिए स्थानों और तिथियों का निर्धारण पूर्व-नियोजित होता है। इस नृत्य में भाग लेने वाले नर्तक-नर्तकियों की संख्या और उन की उम्र पर कोई प्रतिबंध नहीं है। इसीलिए इस नृत्य में किशोरियों से लेकर वृद्ध-वृद्धाएँ तक भाग लेते हैं और उन की संख्या पाँच से सौ तक भी हो सकती है।

लाइ-हराओबा नृत्य में 'माइबी' की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। इस नृत्य में यह सूत्रधार की भूमिका अदा करती हैं। 'माइबी' को एक प्रकार की 'देवदासी' समझा जाना चाहिए। ये लोग देव-देवी समर्पित विशिष्ट स्त्री या पुरुष होते हैं जिन पर भगवान या देवी की विशेष कृपा रहती है। यह कहना मुश्किल होता है कि समाज के अन्य सामान्य लोगों की तरह गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर रहे कोई पुरुष या स्त्री कब माइबी बन जाएगा। अपने अन्दर कुछ विशेष प्रकार की दैवी-शक्ति की अनुभूति होते ही कोई पुरुष या स्त्री माइबी का जीवन अपनाने के लिए बाध्य हो जाता है। ये किसी विशेष देवता या देवी के कृपा पात्र बन जाते हैं अर्थात उस देव-देवी का कुछ अंश इनमें भी आ जाता है और वह देव-देवी इन्हीं के माध्यम से जन-जीवन के प्रति अपनी प्रसन्नता या आक्रोश प्रकट करते हैं तथा मौसम अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़, सूखा, अकाल या महामारी के संबन्ध में भविष्यवाणियाँ करते हैं।[1] जब दैवी-शक्ति का प्रादुर्भाव इन पर होता है तो ये एक विशेष प्रकार की आविष्ट मनोदशा में आकर अपने हाथ, सिर तथा पूरे शरीर को विचित्र प्रकार से हिलाने लगते हैं तथा अस्पष्ट-सी बोली में कुछ बड़बड़ाने लगते हैं। कभी-कभी कुछ क्षणों के लिए ये मूर्छित भी हो जाते हैं। ये लोग बिलकुल सफेद वस्त्र धारण करते हैं और मणिपुरी समाज में इन्हें विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। भूत-प्रेत बाधा से किसी को मंत्र-तंत्र से मुक्त करना, रोग-व्याधि दूर करना तथा भविष्यवाणी करना इन का मुख्य व्यवसाय होता है।

लाइ-हराओबा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर गहराई से विचार करने पर ऐसा लगता है कि इस में ह्रासोन्मुख बौद्धकालीन तांत्रिक साधना, हिन्दू उपासना पद्धति के विधि-विधानों और मैतइ

धर्मावलम्बियों के आर्येत्तर धार्मिक अनुष्ठानों का कुछ अजीब-स-मिश्रण हो गया है। कालक्रम से इस के मौलिक स्वरूप में कुछ-न-कुछ परिवर्तन होते गये हैं। किन्तु आज भी 'मीतैरोल' (प्राचीन मणिपुरी भाषा) में लिखित 'लैथक लैखारोल' 'थिरेल लयात' तथा 'पुदिल' नामक पुराणों में इस धार्मिक नृत्य-शृंखला के विधि-विधान अपने मौलिक रूप में सुरक्षित हैं। इन पुराणों में 'लाइ-हराओबा' नृत्य के नर्तक-नर्तकियों की वेश-भूषा, नृत्य-मुद्राओं, भंगिमाओं, तथा अंग-प्रत्यंग-संचालन प्रक्रियाओं एवं उनके प्रतीकार्थों का वर्णन जिस रूप में किया गया है वह भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित मुद्राओं और भंगिमाओं से काफी भिन्न है। चूँकि लाइ-हराओबा में आंगिक अभिनय की ही प्रधानता है, इसलिए नर्तक-नर्तकियाँ अपने शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों तथा उपांगों के हाव-भाव, गति, थिरकन, मचलन तथा चेष्टाओं द्वारा सांकेतिक और प्रतीकात्मक मुद्राओं में इस नृत्य में अन्तर्निहित कथात्मकता की अभिव्यक्ति करते हैं। लाइ-हराओबा में सौ से भी अधिक संयुक्त और असंयुक्त हस्त-मुद्राओं का प्रयोग अलग-अलग भाव-बिंबों तथा वस्तु-प्रतीकों के रूप में किया जाता है। इस नृत्य में प्रयोग की जानेवाली असंयुक्त हस्त की कुछ प्रमुख मुद्राएँ हैं— पताका, त्रिपताका, अर्द्ध पताका मृगशीर्ष, हंस, अंकुर तथा त्रिशूल आदि। इसी प्रकार शंख, चक्र, अंजलि, संपुट, पुष्पपुट, कोकिला, शुक तथा स्वस्तिका आदि संयुक्त हस्त की विविध मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त पैर, सिर, आँख, भौं, गर्दन तथा उर की भी अनेक मुद्राएं और भंगिमाएं इस नृत्य के नर्तक-नर्तकियाँ प्रदर्शित करते हैं। इन विविध मुद्राओं-भंगिमाओं में निहित सांकेतिकता तथा प्रतीकात्मकता के सूक्ष्म विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि परवर्तीकाल में मणिपुर के उदारचेता

नृत्य-गुरुओं ने भरत के नाट्यशास्त्र से प्रभाव ग्रहणकर के मूलतः लोक-शैली के इस नृत्य को शास्त्रीयता का स्तर प्रदान करने में अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। उपर्युक्त नृत्य-मुद्राएँ और भंगिमाएँ ही मणिपुरी नृत्यशैली की अपनी खास विशेषताएँ हैं जिनके चलते मणिपुरी नृत्य- अपनी अलग पहिचान कायम कर सका है और लाइ-हराओबा मूलतः लोक-नृत्य होते हुए भी भारत के शास्त्रीय नृत्यों में अपना स्थान बनाने लगा है।

लाइ-हराओबा नृत्य की पृष्ठभूमि में चलनेवाली अन्तर्कथा का जो पौराणिक आधार है वह सृष्टि के निर्माण और विकास के संबन्ध में मणिपुरियों की मौलिक कल्पना और धार्मिक आस्था का जीवन्त प्रतीक है। सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ किन किन प्रक्रियाओं से इसका फैलाव हुआ और मानव सभ्यता कैसे विकसित होती गयी— यह पूरी कहानी इस नृत्य में बड़े ही कलात्मक प्रतीकों द्वारा प्रदर्शित की जाती है। सृष्टि के निर्माण और विकास संबन्धी यह पौराणिक कथा हिन्दू विश्वासों तथा पौराणिक कथाओं से एकदम भिन्न है।

इस कथा के अनुसार नौ देवताओं ने मिलकर पृथ्वी को स्वर्ग से उतारा। सात देवियों ने ( लाइ नुरा ), जो पहले से जल पर नृत्य कर रही थीं, इस पृथ्वी को जल की सतह पर स्थापित किया। इस प्रकार पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन इस पृथ्वी को समतल बनाकर रहने के योग्य बनाने का काम माइबियों ने किया। माइबियों के नृत्य शील चरणों के पदाघात से यह पृथ्वी समतल हुई और इस प्रकार देवों का श्रम सार्थक हुआ।

लाइ-हराओबा नृत्य शुरू होने के पूर्व माइबियाँ गाँव के बड़े-बूढ़ों के साथ आस-पास के किसी नदी-तालाब के किनारे जाकर

देवताओं का आह्वान कर जल में पुष्पांजलि देती हैं। माइबा सोने चाँदी आदि धातुओं के कण जल में अर्पित करते हैं। इस के बाद माइबियाँ परम विस्मृति और उन्मादग्रस्तता जैसी स्थिति में पहुँचकर अपने सम्पूर्ण शरीर को पीपल के पत्ते की तरह कंपाते हुए अपने अंदर दैवी शक्ति प्रादुर्भूत होने का भाव दर्शाते हुए नृत्यशील होती हैं। और ग्राम वासियों के लिए भविष्यवाणियाँ करती हैं।

नृत्य के दूसरे चरण में देवी-देवताओं के प्रादुर्भाव की कल्पना कर ली जाती है जिसे 'लाइ-इकौबा' कहा जाता है। इस चरण में प्रादुर्भूत देवी-देवताओं की आत्मा का निवास मिट्टी के दो नये घड़ों में कराया जाता है। इसके बाद उन घड़ों में आत्मा के प्रतीक फूलों के गुच्छों को खोलकर माइबियाँ नौ आदि देवों तथा सात आदि देवियों की चेतना का स्फुरण उनमें कराती हैं। पौराणिक मान्यता है कि चारों दिशाओं के रक्षक चार देव इस नृत्य को देखने के लिए वहाँ उपस्थित हो जाते हैं और विघ्न-बाधाओं से रक्षा करते हैं।

इस के उपरान्त सामान्यतः दो माइबियों नृत्य करती हुई देव-मंदिर में जाती हैं और देवी प्रतिमा के आगे बैठकर हर्ष-विषाद की उन्मादक ध्वनि में गाँव के भावी सौभाग्य या दुर्दिन की घोषणा करती है। फिर देवी-देवताओं के स्वागत में माइबियों का नृत्य होता है जिसे 'जगोइ-ओकपा' कहा जाता है। इस चरण में माइबियाँ नृत्य के क्रम में प्रतीकात्मक आंगिक भगिमाओं और चेष्टाओं द्वारा देवताओं के आगमन की सूचना देकर हर्ष व्यक्त करती हैं। फिर देवताओं के जन्म की प्रक्रिया को नृत्य में प्रदर्शित किया जाता है। इस सृष्टि-नृत्य में माइबियाँ प्रसव-पीड़ा में तड़पती

स्त्री के मुख से निकलती "हाय हाय होय-होय हाय" आदि पीड़ा सूचक ध्वनियों का उच्चारण करती हुई हाथ, चेहरा तथा विभिन्न अंगों की प्रतीकात्मक मुद्राओं द्वारा प्रसव-कालीन स्थिति की सूक्ष्म प्रक्रियाओं की अभिव्यंजना कर देवी-देवताओं के जन्म का अभिनय करती हैं।

अब. अगले चरण में हाथों की संयुक्त और असंयुक्त मुद्राओं द्वारा माइबियाँ तथा अन्य नर्तकियाँ इन नवजात देवताओं के निवास के लिए घर बनाने का अभिनय करती हैं। घर बनाने की एक-एक प्रक्रिया को (घास-पत्ते एकत्र करना कुल्हाड़ी से बांस लकड़ी काटना, झोंपड़ी बांधना, ऊपर उठाना आदि) नर्तकियाँ बड़ी कलात्मकता से अभिनय द्वारा दिखलाती हैं। घर बनाकर देवताओं को निवास के लिए समर्पित कर दिया जाता है।

इसके बाद देवता 'नोंगपोक निंगथौ' जो शिव के अवतार समझे जाते हैं कंधे पर 'कांगजै' (पोलो) खेलने की छड़ी लेकर घर से निकलते हैं और देवी 'पानथोइबी' से मिलते हैं, जो पार्वती की अवतार मानी जाती हैं। 'नोंगपोक निंगथौ' और 'पानथोइबी' दोनों मिलकर शृंगारिक चेष्टाओं के साथ नृत्य करते हुए सृष्टि-विकास के लिए प्रणय का बीज बोते हैं। बोलना न होगा कि सृष्टि-विकास का यह लम्बा उपाख्यान नर्तकियों और नर्तकों द्वारा नृत्य की विभिन्न मुद्राओं, भंगिमाओं और संकेतों द्वारा ही अभिव्यक्त किया जाता है जब कि पृष्ठभूमि में यह उपाख्यान गीत के रूप में गाया जाता रहता है। नोंगपोक निंगथौ और पानथोइबी की प्रणय-चेष्टाओं को नृत्य की लास्य-शैली में प्रदर्शित किया जाता है। फिर दोनों पहाड़ पर जाकर कपास के बीज बोने से लेकर पौधे के विकसित होने, फूलने, रुई निकलने, सूत कातने और

कपड़ा बुनने तक की सारी प्रक्रियाओं को नृत्य की भाषा में प्रदर्शित करते हैं। इस विशेष नृत्य में नाट्य-शास्त्र में वर्णित नृत्य की प्रायः सभी आंगिक चेष्टाओं, मुद्राओं तथा संकेतों और प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है।

यहाँ तक आकर लाइ-हराओबा की मूल कथा समाप्त हो जाती है अर्थात स्वर्ग से पृथ्वी के उतारे जाने से लेकर सृष्टि के विकास और खेती एवं वस्त्र बुनने की कला के विकास के साथ मानव-सभ्यता की नींव पड़ जाती है। फिर नर्तक-नर्तकियाँ मछली पकड़ने, जाल बुनने, जंगल में शिकार करने तथा दैनिक जीवन के विविध क्रिया-कलापों की विभिन्न प्रक्रियाओं को नृत्य में दिखाते हैं। एक सप्ताह से दो सप्ताह तक यह नृत्य समारोह एक स्थान पर होता है। अंत में देवी-देवताओं को एक प्रतीकात्मक नौका में बैठाकर स्वर्ग में भेजने के नृत्य के साथ इस समारोह की समाप्ति हो जाती है।

लाइ-हराओबा नृत्य का आयोजन जहाँ कहीं भी होता है, पूरी पवित्रता, निष्ठा और पूजा-भावना से होता है। इसके विधि-विधान में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिए। इस नृत्य का कथानक, पार्श्व-संगीत, नर्तक-नर्तकियों की मुद्राएँ तथा भंगिमाएँ अपने-आप में इतने संश्लिष्ट तथा प्राचीन-नवीनके मिश्रण हैं कि इन के मूल स्रोत का पता लगना अत्यंत कठिन है। इस नृत्य में पूर्व-वैदिक वैदिक मध्य तथा आधुनिक युग के मिथकों, जन-श्रुतियों, लोक-कथाओं, पौराणिक आख्यानों, प्रतीकों, मान्यताओं तथा नृत्य-शैलियों और तकनीकों का अद्भुत समन्वय हो गया है। प्राचीन लाइ-हराओबा और आधुनिक लाइ-हराओबा एक लोक-नृत्य का शास्त्रीयता की दिशा में विकसित होने की एक लम्बी परम्परा

का द्योतक है। इस नृत्य की पूरी प्रक्रिया को देखने से कुछ ऐसी धारणा बनती है कि वैदिक संस्कृति और हिन्दू धार्मिक मान्यताओं से कुछ अलग और भिन्न कोई एक अपनी उन्नत सांस्कृतिक धरोहर मणिपुर के पास थी।

निश्चित रूप से लाइ-हराओबा मूल रूप में एक धार्मिक अनुष्ठान था पर धीरे-धीरे इसमें कलात्मकता की प्रधानता होती गयी है। इसी विकास-प्रक्रिया में परवर्ती युग की कुछ पौराणिक या अर्द्ध ऐतिहासिक कहानियाँ भी लाइ-हराओबा नृत्य-शृंखला में जुड़ती गयी हैं। 'खम्बा-थोइबी –नृत्य' के नाम से विख्यात मणिपुरी नृत्य भी आज लाइ-हराओबा नृत्य की ही एक कड़ी बन गया है। मणिपुर के जन-मानस को अपनी अपूर्व मार्मिकता से आंदोलित करनेवाले खम्बा और थोइबी नामक प्रेमी–युगल की मार्मिक प्रणय-गाथा पर आधृत 'खम्बा-थोइबी नृत्य अपनी संगीतमयता, मार्मिकता और उच्चकलात्मक अभिव्यंजना के कारण मणिपुरी शैली के नृत्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

फाल्गुन-चैत के महीने में मणिपुर के गाँव-गाँव में बड़े धूम-धाम और उत्साह से आयोजित होनेवाला 'थाबल-चोंगबा' ( थाबल = चाँदनी + चोंगबा = नृत्य ) अर्थात चांदनी रात में होनेवाला नृत्य भी लाइ–हराओबा नृत्य-शृंखला के अंतगत ही है। 'थाबल-चोंगबा' मणिपुर का एक ऐसा समूह-नृत्य है जो केवल किशोर-किशोरियों तथा युवक-युवतियों के समूह द्वारा खुले मैदान में चाँदनी रातों में संपन्न होता है। लाइ-हराओबा शृंखला के प्रायः सभी नृत्य लास्य और ताण्डव शैली में होते हैं। इस नृत्य की विशेषता नर्तक-नर्तकियों के हाव-भाव तथा मुद्राओं की मन्थर गतिशीलता अर्थगर्भित सांकेतिकता में निहित है। इस नृत्य में पहाड़ी झरनों की

उद्दाम गतिशीलता और अनियंत्रित प्रवाह नहीं, बल्कि समतल में बहती गंगा-सी नियंत्रित मंथर गतिशीलता तथा आंतरिक गरिमा रहती है ।

लाइ-हर.ओबा नृत्य में नर्तक-नर्तकियों की वेश-भूषा बड़ी आकर्षक होती है । माइबा-माइबियाँ तो बगुले के पंख-से धवल वस्त्र धारण करते हैं तथा किसी प्रकार का आभूषण भी धारण नहीं करते किन्तु अन्य नर्तकियाँ कमर में रंगीन फनेक, आधी बाँह की मखमली ब्लाउज, कमर में बंधी आगे झूलती कामदार काछनी, सिर, गले और बांहों में स्वर्णिम आभूषण तथा पीछे कमर के नीचे तक झूलते मुक्त कुंतलों से युक्त होती हैं। नर्तकों का विन्यास भी कम आकर्षक नहीं होता । वे रंगीन धोती को चुस्त पाजामे सा कमर में बांधते हैं. आधी बाँह की चुस्त-रंगीन मखमली ब्लाउज, सिर पर सफेद पगड़ी और पगड़ी के ऊपर रंगीन मोर-पंख हवा में लहराते रहते हैं। नर्तक बाँह गले और कलाई में स्वर्णिम आभूषण पहनते हैं। पवित्र संगीत के मधुर वातावरण में ऐसे भडकीले शृंगारिक प्रसाधनों से युक्त नर्तक-नर्तकियों का कलात्मक नृत्य देखते हुए ऐसा लगता है, जैसे भीतर सब कुछ मधुर सिहरन से भरता जा रहा है, मन इन्द्रिय बोध की सारी परतों को पार करता हुआ किसी अपार्थिव वायव्य लोक में विचरण करने लगा है।

## रासलीला :

अन्य भारतीय नृत्यों की तरह मणिपुरी नृत्य भी देवोपासना की एक बिधि के रूप में विकसित हुआ। अनादि काल से मानव भगवान या भगवान के अवतार तथा महत् शक्ति पुंज देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उनके आगे नाचता गाता, उनका गुणगान

करता और उनकी पूजा-प्रार्थना करता आया है। इसी प्रक्रिया में देव-मंदिरों में नृत्य-गान का प्रारम्भ हुआ। चूँकि नृत्य-कला का उद्देश्य मनुष्य के भौतिक यथार्थ से ऊपर उठकर सूक्ष्म आध्यात्मि अनुभूतियों की अभिव्यंजना है, इसलिए मणिपुर में नृत्य को कभी भी मात्र कला के रूप में नहीं स्वीकारा गया। नृत्य यहाँ देवोपासना की पवित्रता और गरिमा से हमेशा समन्वित रहा।

मणिपुर में वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के समय से ही मणिपुरी रासलीला-नृत्य का इतिहास भी प्रारम्भ होता है। वास्तव में 'रास' का शाब्दिक अर्थ होता है— चक्राकार या मण्डलाकार रूप में प्रस्तुत किया जाने वाला समूह-नृत्य। परवर्ती काल में शास्त्रकारों ने 'रास' को 'उपरूपक' मान लिया और इस की गणना रूपक के एक भेद के रूप में होने लगी। गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के प्रचार-प्रसार के साथ ही भक्ति-भावना से प्रेरित हो जिस रासलीला का प्रचार प्रारम्भ हुआ, वह इस नृत्य-नाटक (डान्स-ड्रामा) शैली का परिष्कृत रूप था। मणिपुर के मीतै लोग गौड़ीय वैष्णव संप्रदय में गहरी आस्था रखते हैं। जिस श्रद्धा और भक्ति की भावना से अनुप्रेरित होकर ये लोग वैष्णव धर्म-शास्त्रों का पाठ करते हैं, वही श्रद्धा और भक्ति रासलीला के प्रति भी इन के हृदय में है। वैष्णव धर्मावलम्बी मणिपुर-वासियों के लिए रासलीला एक शास्त्रीय नृत्य ही नहीं अपितु भक्ति की एक विधि है, उपासना की एक पद्धति भी है। इसीलिए मणिपुरी रासलीला का विकास एक ओर तो कलात्मक स्तर पर उत्तरोत्तर होता रहा है, दूसरी ओर यहाँ के निवासियों की धार्मिक भावनाओं से भी इस की संबद्धता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है। फलस्वरूप मणिपुरी रासलीला अपनी पारंपरिक सीमाओं और स्वरूप का निरन्तर विस्तार तथा परिवर्तन करती रही है और इस में कलात्मक परिष्कृतियाँ तथा भावात्मक सूक्ष्मताएँ बढ़ती गयी हैं।

रासलीला, चूँकि वैष्णव धर्म का एक अविभाज्य-अनिवार्य अंग है, इसलिए मणिपुर में इसे एक विशिष्ट नृत्य-शैली नहीं माना जाता बल्कि सत् ( ब्रह्म ) और चिद् ( जीव ) के शाश्वत-लीला-विलास के रूप में देखा जाता है। कृष्ण साक्षात् 'ब्रह्म' हैं और गोपियाँ 'जीव', कृष्ण की मुरली 'माया' है और रासचक्र 'भ्रमणशील विश्व-चक्र' का प्रतीक। इस प्रकार यह 'रासलीला' अपनी सम्पूर्ण आध्यात्मिक रहस्यमयता से पूर्ण विश्व-लीला की ही प्रतीक है।

मणिपुर में रासलीला के उद्भव के संबन्ध में एक बड़ी ही रोचक पौराणिक कथा प्रचलित है। उक्त कथा के अनुसार एक बार राधा और कृष्ण एक रमणीय निर्जन घाटी में रासनृत्य कर रहे थे। शिव को इस घाटी का द्वारपाल नियुक्त किया गया था ताकि कोई भी प्राणी इस युगल-मूर्ति की उस रहस्य-लीला का अवलोकन न कर सके। पार्वती को यह रहस्य मालूम न था। कहीं से घूम-घाम कर पार्वती जब उस घाटी के द्वार पर लौटीं तो द्वारपाल शिव ने उन्हें अन्दर जाने से मना किया। मना करने से पार्वती की जिज्ञासा और अधिक तीव्र हो गयी और वह बार-बार अन्दर जाने का हठ करने लगी। तब शिव ने उन्हें सारी बातें खोलकर बता दीं और यह भी बतला दिया कि लीला विहारी की वह रहस्य-लीला देखने की मनाही है। लेकिन पार्वती ने किसी तरह जिद करके उस रास लीला की एक झलक देख ली। फिर तो पार्वती ने भी अपने पति शिव के साथ उसी तरह रास-लीला करने की ठानली। त्रिया हठ के आगे शिव को भी झुकना पड़ा। चारों ओर से पर्वत-शृंखलाओं से घिरी हुई एक दूसरी सुरम्य निर्जन घाटी की तलाश की गयी। उस घाटी के मध्य में एक विशाल झील थी। शिव ने अपने त्रिशूल को झील में

गाड़कर सारा पानी सुखा दिया। इस घाटी में सात दिन और सात रातों तक शिव-पार्वती की रास लीला अनवरत चलती रही। पाताल लोक के नाग देवता ने अपनी अलौकिक दिव्य मणि के प्रकाश से पूरी घाटी को आलोकित किया था और गंधर्वों तथा अन्य देवताओं ने इस रास-नृत्य में विविध वाद्य बजाए थे। नाग देवता की उस मणि के कारण ही इस घाटी का नाम 'मणिपुर' रखा गया और वर्तमान मणिपुरी उन्हीं गंधर्वों के वंशज हैं।

यह पौराणिक आख्यान जहाँ एक तरफ मणिपुर में रास-लीला की प्राचीनता तथा सुदीर्घ परम्परा की ओर संकेत करता है, वहीं दूसरी ओर रासलीला के प्रति मणिपुर-वासियों की धार्मिक भावना को भी व्यंजित करता है।

भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र' और नृत्य तथा अभिनय पर लिखे गये अन्य प्राचीन ग्रंथों में तीन प्रकार के रास-नृत्य का उल्लेख मिलता हैं— 'ताल रास, 'डंडारास' और 'मंडल रास'। 'ताल रास' एक तरह का समूह-नृत्य है, जिस में नर्तक नर्तकियों का समूह दोनों हाथों से ताली बजाता हुआ चक्राकार घेरे में घूमता है। मणिपुरी भाषा में इसे 'खुबाइशै' कहते हैं। 'डंडा-रास' में नर्तक हाथ में छोटे-छोटे डंडे लेकर उसे एक-दूसरे के डंडे से बजाते हुए मण्डलाकार घेरे में नृत्य करते हैं। मणिपुर में यह 'गोष्ठ-रास' के नाम से प्रसिद्ध है। इस नृत्य का संबन्ध कृष्ण के गोचारण काल से है। 'मंडल-नृत्य' में गोपियाँ मण्डलाकार घेरे के मध्य में कृष्ण को घेर कर नृत्य करती हैं।

मणिपुरी रासलीला का नवोन्मेष वास्तव में महाराजा भाग्यचन्द्र जी के राज-काल में ( सन् १७६७—१७९८ ई० ) हुआ। भाग्यचन्द्र महाराज परम वैष्णव भक्त थे। ऐसी किंवदन्ती है कि मणिपुर

का महाराजा बनने के पूर्व ही एक बार स्वप्न में उन्हें भगवान कृष्ण ने दर्शन दिये थे। भाग्यचन्द्र ने भगवान से प्रार्थना की थी कि हे प्रभु, आप ही मणिपुर के महाराजा हों और यह दास आपकी सेवा करें। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने भक्त की प्रार्थना स्वीकार की और उन्हें 'काइना गिरि' पर स्थित एक विशेष कटहल के वृक्ष की लकड़ी से अपनी प्रतिमा बनवाकर मन्दिर में स्थापित करने का निर्देश दिया। महाराजा बनने के बाद महाराज भाग्यचन्द्र ने भगवान के इस निर्देश का पालन किया। उन्होंने वैष्णव-धर्म और नृत्य-कला के मर्मज्ञ पंडितों की सहायता से अपने आराध्य देव राधा-कृष्ण के अनुपम नैसर्गिक सौंदर्य एवं यशोगान के रूप में नूतन रासलीला की रचना की। रासलीला के नर्तक-नर्तकियों की वेश-भूषा तथा शृंगार-विन्यास की मौलिक कल्पना भी उन्होंने स्वप्न में देखे गये भगवान कृष्ण की वेश भूषा के आधार पर की। महाराज भाग्यचन्द्र के समय से ही मणिपुर में रासलीला की एक सर्वथा नयी शैली का प्रारम्भ हुआ जो आज 'मणिपुरी रासलीला' की विशिष्टता बन गया है। कालक्रम से महर्षि भाग्यचन्द्र के उत्तराधिकारियों तथा यहाँ क नृत्य-गुरुओं द्वारा भी मणिपुरी रासलीला में कलात्मक निखार और नूतन नृत्य-शैलियों तथा तकनीकों का विकास किया जाता रहा। इस प्रकार समय और अवसर के अनुकूल नये-नये रास-नृत्य जोड़कर रासलीला-शृंखला का विस्तार किया जाता रहा।

सम्प्रति मणिपुरी रासलीला के अन्तर्गत चार रास-नृत्य होते हैं— 'महारास', 'कुंजरास', 'बसन्त रास' और 'नित्यरास' अथवा नर्तन रास। इन के अतिरिक्त 'गोष्ठ-रास' तथा उखल' रास भी विशेष अवसर पर होते हैं। इन अलग-अलग रासों के आयोजन का समय निर्धारित है।

महारास :

महारास का आयोजन शरत पूर्णिमा की धवल चांदनी रात में होता है। इसका आधार श्रीमद्भागवत की 'रास पंचाध्यायी' है। कृष्ण राधा से मिलने के लिए वृन्दावन में संकेत-स्थल पर जाते हैं। उन की भुवन मोहिनी मुरली की तान सुन राधा प्यारी तथा अन्य गोपियाँ खिंची हुई आखेट-स्थल पर चली जाती हैं। कृष्ण को चारों ओर से आवृत्त कर सभी गोपियाँ मंडलाकार नृत्य करती हैं। जब गोपियाँ नृत्य में तल्लीन हो सुध-बुध खोकर विभोर हो जाती हैं तब लीला विहारी कृष्ण चुपके से राधा के साथ किसी कुंज में छिप जाते हैं राधा को अपने इस सौभाग्य पर घमंड हो जाता है। कृष्ण उसके अहंभाव को तोड़ने के लिए अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। इधर गोपियाँ कृष्ण को अपने बीच न देखकर दुख से व्याकुल हो जाती हैं। वे विरह-कातर हो रोती-बिलखती वृन्दावन के हर लता-कुंज से अपने प्रियतम के बारे में पूछती फिरती हैं। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा निरंतर बहती रहती है।

इसी बीच कृष्ण-वियोग में रोती-बिसूरती बावरी राधा उन्हें मिल जाती है। वह भी वृन्दावन के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और लता-कुंजों से अपने निर्मोही प्रियतम का अता-पता पूछती फिर रही है। राधा को भी अपनी ही तरह विरहाग्नि में जलते हुए देख कर वियोग-जनित वेदना के आंसुओं में राधा और गोपियों का आंतरिक मनोमालिन्य और ईर्ष्या-भाव धुल जाता है और भीतर का अहंभाव समाप्त हो जाता है। सब मिलकर एक साथ कातर-स्वर में प्रियतम कृष्ण की गुहार करती हैं। कृष्ण प्रकट होते हैं। एक ही कृष्ण नहीं, जितनी गोपियाँ उतने कृष्ण ( एक गोपी एक

श्याम )। फिर सब आत्मविभोर हो रास-नृत्य में तल्लीन हो जाते हैं। रास चलता रहता है सारी रात। चाँद ढलने लगता है -- सुबह होनेवाली है। कृष्ण राधा तथा अन्य गोपियों को बहुत तरह से समझा-बुझाकर उनके घर भेज देते हैं।

महारास की सम्पूर्ण कथा आध्यात्मिक संकेतों और प्रतीकों से भरी है। ब्रह्म से एकाकार होने के लिए जीवात्मा तड़पती है, रोती बिलखती है लेकिन इस मिलन में बाधक है -- उसका अहं भाव। अपनी अलग इयत्ता को भूले बिना अपने अहं से मुक्त हुए बिना उस सर्वात्मा से शाश्वत मिलन सम्भव नहीं है। अपने अहं को पूर्णतः विसर्जित कर असहाय भाव से आत्मसमर्पण कर के ही उस महाचिति का सान्निध्य पाया जा सकता है।

## बसन्त रास :

बसन्त पूर्णिमा की दूधिया चाँदनी के उन्मादक वातावरण में बसन्त रास का आयोजन होता है। आँखों में बसन्त की मादकता और अंग-अंग में कामदेव के पुष्प बाणों की प्रणय-पीड़ा लिए राधा, कृष्ण तथा अन्य गोपियाँ मधुपर्व मनाने के लिए चाँदनी के चांदोवे के नीचे वृन्दावन में एकत्र होती हैं। कृष्ण राधा की उपेक्षा कर चन्द्रावली का हाथ पकड नृत्य करने लगते हैं। राधा का हृदय ईर्ष्या से जल उठता है। वह कुचली नागिन-सी फुत्कारती हुई मुख पर नीला घूंघट डाले ( नाराजगी का प्रतीक ) रास-मंडप छोड़कर चली जाती है। नीला घूंघट देखते ही कृष्ण महारानी जी की नाराजगी का कारण समझ जाते हैं। वह चन्द्रावली का हाथ छोड़ राधा के पास आते हैं, पर राधा मान किये चुपचाप खड़ी रहती है। उनकी ओर देखती भी नहीं। कृष्ण उसे

मनाते हैं, मनुहार करते हैं, क्षमा मांगते हैं। राधा मान जाती है। दोनों फिर रास मंडप में आ जाते हैं और रंग, अबीर, गुलाल एक-दूसरे को लगाते हुए सभी गोपियों और राधा के साथ कृष्ण नाचते हैं।

बसन्त रास में नर्तक-नर्तकियों की कलात्मक भावाभिव्यंजना के लिए तीन महत्त्वपूर्ण भाव-स्थितियों की योजना की गयी है—चन्द्रावली-कृष्ण की प्रणय-लीला, राधा की ईर्ष्या, मान तथा मान-भंग और बसंतोत्सव में रंग-अबीर का खेल। इस प्रकार बसन्त रास में आमोद-क्रीड़ा, प्रणय, ईर्ष्या, मान-मनुहार आदि सूक्ष्म आंतरिक भावों को नृत्य-शास्त्र की सांकेतिक भाषा—हाथ, मुख, आँख तथा भृकुटियों की विभिन्न मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्त करने का अवसर कलाकार पा जाते हैं।

### कुंज रास :

इस रास में कृष्ण राधा तथा अन्य गोपियों के साथ अभिसार करने के बाद कुंज—वन में विश्राम करते हैं और फिर सभी मिलकर रास-नृत्य करते हैं।

### नित्य रास :

इसमें राधा, कृष्ण तथा अन्य गोपियों का मिलन और प्रेम क्रीड़ा को सामूहिक नृत्य द्वारा दिखाया जाता है। इसके लिए कोई विशेष समय या तिथि निर्धारित नहीं है।

### गोष्ठ रास :

इसमें कृष्ण के गोपाल रूप का दिग्दर्शन कराया जाता है और उनके गोचारण-काल से संबन्धित विभिन्न लीलाओं को नृत्य

द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कृष्ण, बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालों का वृन्दावन में कंदुक-क्रीड़ा, बलराम द्वारा ताड़वन में धेनुकासुर का वध तथा कृष्ण द्वारा बकासुर के वध से संबन्धित प्रसंग मुख्य रूप से गोष्ठ-रास में प्रदर्शित किए जाते हैं। इस नृत्य में ताण्डव-शैली को प्रधानता होती है।

ऊखल-रास :

माखन चोर नटखट गोपल की शैशव कालीन विभिन्न लीलाओं और बाल-क्रीड़ाओं के प्रसंग ही इसकी मुख्य] कथा-वस्तु होती है। बालक कृष्ण की शरारतों और पास-पड़ोस के गोप-गो[ि]यों के बार-बार के उलाहनों से तंग आकर एक दिन माता यशोदा उन्हें ऊखल में बांध देती है। कृष्ण दो पेड़ों के बीच में ऊखल को फँसाकर रस्सी तोड़ देते हैं और किलकारी मारते हुए भाग खड़े होते हैं।

मणिपुर में वैष्णव धर्म के आगमन के समय से ही यहाँ के नृत्य-संगीत विशारद गुरुओं तथा नृत्य-कला मर्मज्ञ कलाकारों ने रास लीला के क्षेत्र में नवीन उद्भावनाएँ करने तथा नई-नई शैलियों के विकास में अपनी मौलिक प्रतिभा का उपयोग किया है। भले ही रासलीला की कथा-वस्तु का निर्माण पूर्णतः शास्त्रीय आधार पर किया गया है फिर भी मेधावी और स्वच्छंद चेता कलाकार अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर इस की तकनीक और शैली में नवीनता लाने के लिए स्वतंत्र रहे हैं। मणिपुर का 'नृत्य-संघ ' ऐसी नवीन उद्भावनाओं का सहर्ष स्वागत करता रहा है।

मणिपुरी रासलीला में जिस संगीत का प्रयोग किया जाता है वह अत्यंत ही मधुर, संवेदनात्मक, प्रभावशाली तथा शास्त्रीय पद्धति का होता है। मृदंग, बांसुरी, इसराज, शंख तथा छोटे-छोटे झाल आदि वाद्ययंत्रों की संगति जो नृत्य की पार्श्वभूमि में चलता है वह हृदयके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तथा गहरी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में पूर्णतः समर्थ होता है मणिपुरी नृत्य की तीनों शैलियाँ - नृत्त, नृत्य और नाट्य रासलीला में बड़े ही कलात्मक ढंग से अनुस्युत हैं। रासमंडप की पृष्ठभूमि में गाये जाने वाले गीत जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास तथा गोविन्ददास जैसे मधुर भाव के वैष्णव भक्त कवियों के होते हैं, जो अपनी मधुरता और शृंगारिक अभिव्यक्तियों के कारण रासलीला के सम्पूर्ण वातावरण को रसप्लावित कर देते हैं।

मणिपुरी रासलीला की सर्वाधिक विशिष्टता है, नर्तक-नर्तकियों का शृंगारिक-प्रसाधन और नयनाभिराम आकर्षक वेश-भूषा। इनके विविध परिधान तथा अंगाभूषण इतने चमकीले-भड़कीले, सलमा-सितारे जड़े आकर्षक तथा रंग-बिरंगे होते हैं कि दर्शकों की आँखों में चकाचौंध पैदा हो जाती है। ऐसा लगता है, जैसे कुछ देर के लिए इस यथार्थवादी दुनिया से अलग किसी दूसरे ही लोक में पहुँच गये - सपनों के लोक में, जहाँ सब कुछ सुन्दर, आकर्षक और मन भावन ही है। कृष्ण केसरिया रंग की धोती, गले में मणिमाला, कमर में काछनी तथा हाथ में मुरली धारण किये रहते हैं। राधा तथा अन्य गोपियाँ कमर में एक विशेष प्रकार की निर्मित मेखला धारण करती हैं जिस में चाँदी-सोने के तारों तथा कांच-अबरक के चमकीले टुकड़ों का काम किया रहता है, इसे 'कुमिन' कहते हैं। 'कुमिन' मणिपुरी रासलीला की विशेष देन है।

मणिपुर में रासलीला का आयोजन 'नाट मडपों' में किया जाता है जो प्रायः प्रत्येक वैष्णव मंदिर के प्रांगण में शास्त्रीय विधि-विधान

के अनुसार निर्मित होता है। रास लीला प्रारम्भ करने के पूर्व मंदिर के प्रधान पुजारी उस दिन का विशेष नृत्य श्रीगोविन्दजी को समर्पित करते हुए पूजा करते हैं। 'मंडप-मपु' ( अध्यक्ष ) श्लोक पाठ करते हैं, नाटपाला स्तुति करता है और दशकों ( भक्तों ) का स्वागत तांबूल तथा चंदन से किया जाता है। रासधारी के मृदंग-वादन और सूत्रधारिणी के राग आलाप के साथ गुरु-वन्दना वैष्णव-वन्दना तथा वृंदावन वर्णन होता है। और तब वास्तविक रासलीला शुरु होती है। इन सारे विधि-विधानों को देखने से यह सहज ही विश्वास हो जाता है कि मणिपुरी रासलीला मात्र एक शास्त्रीय नृत्य ही नहीं, देवोपासना की एक विधि भी है भक्ति की एक पद्धति भी है।

## संकीर्तन तथा चोलोम :

'लाइ-हराओबा' और 'रासलीला' की ही तरह मणिपुरी संकीर्तन और चोलोम भी अपने आप में एक पूर्ण विकसित संगीत-नृत्य की विधा है। जब वैष्णव भक्तों के हृदय का सामूहिक भक्ति उद्गार संगीत के ताल-स्वरों में आबद्ध हो नृत्य की मुद्राओं-भंगिमाओं में तिरोहित होकर भगवान श्रीकृष्ण और राधारानी के यशोगान के रूप में प्रकट होता है तब मृदंगों और झालों के उन्मादक समवेत स्वर से मंडपों का सम्पूर्ण वातावरण भक्तिमय संगीत और संगीतमय नृत्य के स्वप्निल झूले में झूलने लगता है। वैसे तो मणिपुर में संकीर्तन प्रचलन और विकास एक धार्मिक कृत्य और भक्ति की विधि के रूप में ही हुआ, लेकिन यहाँ के नृत्य संगीत प्रिय भक्तों ने इस में संगीतात्मकता और नृत्यशीलता क तत्त्वों का संयोग कर इसे एक स्वतंत्र कला-विधा का रूप दे दिया।

मणिपुरी संकीर्तन की अपनी खास विशिष्टता बन गयी है भगवा की गुण कीतन के साथ लोक-नृत्य के एक विशेष प्रकार —'करतार चोलोम' और 'पुंग चोलोम' जैसे वाद्ययुक्त नृत्य का अपूर्व संयोग हो जाना। वास्तव में 'करतार चोलोम' ( झाल बजाते हुए समूह-नृत्य ) और 'पुंग चोलोम' ( मृदंग बजाते हुए समूह-नृत्य ) एक प्रकार के वाद्ययुक्त नृत्य हैं। करतार चौलोम' में झाल बजाते हुए नर्तक वादकों की मण्डली नृत्य की विभिन्न मुद्राओं, भंगिमाओं और गतियों का प्रदर्शन करती है और साथ ही साथ कीतन भी गाती है। 'पुंग ( मृदंग ) चोलोम' में भी ऐसा ही होता है लेकिन दोनों में एक बडा अन्तर यह है कि जहाँ 'करतार चोलोम' में मृदंग-वादक भी साथ देते हैं, वहाँ 'पुंग चोलोम' में करतार-वादक नहीं होते। इन दोनों वाद्य-नृत्यों को जिस खूबी के साथ यहाँ के कलाकारों ने संगीर्तन के साथ गूंथ दिया है, वह इन की मौलिक प्रतिभा की देन ही कही जायेगी।

इन दोनों वाद्य-नृत्यों की अपनी अलग-अलग नियम-संहिता ( कोड ) है और इनका पालन करना प्रत्येक कलाकार के लिए आवश्यक होता है। संकीर्तन के नृत्य, गीत-रचना, सगीत की ताल-लय तथा कलाकारों की वेश भूषा भी पूर्व निर्धारित है।

'करतार चोलोम' में वादक-नर्तकों का दल हाथ में झाल लेकर सर्वप्रथम 'स्थानक' की निर्धारित मुद्रा में खड़ा होता है मृदंग पर पहली थाप पड़ते ही अपने झालों को एक निश्चित ताल में बजाते हुए निर्धारित घेरे में ताल और लय के अनुसार अपने पैरोंको गतिशाल बना देते हैं। इसे 'करताल मरोल' कहते हैं। झाल या मृदंग वादक नर्तकों के नृत्यशील चरणों की गति और मुद्राओं को झाल मृदंग और गीत की ताल-लय नियंत्रित करते हैं। मृदंग

और झालों की सम्मिलित ध्वनि कभी तो बसन्त की मदमाती तंद्रिल बायु की तरह मंद-मंद मधुर होती है और कभी तीव्रगामी झंझावात या विकट मेघ-गर्जन-सा भयानक और रौद्र। वादक-नर्तक भी इसी ताल-लय के अनुसार कभी तो गज-गति से झूमते हुए मन्थर गति से चलते हैं और कभी हंस, मराल या मोर की तरह ठुमक-ठुमक कर मचलते-इठलाते हुए। कभी चीते या हिरण-सी छलांग लगाते हैं और कभी बाजीगर-सा करतब दिखाते हैं। इसी तरह 'मृदंग चोलोम' में भी मृदंग बजाते हुए नर्तकों का समूह तालों और लयों के अनुसार सिर ग्रीवा, कंधे, कमर, बाहु, घुटनों तथा पैरों की अलग-अलग मुद्राएँ प्रदर्शित करता है। 'पुंग चोलोम' नृत्य कला की बारीकियों, तकनीक, गतिशीलता और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से 'करताल चोलोम' की अपेक्षा अधिक कलात्मक और समृद्ध है। यह मणिपुरी समूह-नृत्य-वाद्यकला की अनुपम देन है।

# मणिपुर के प्रमुख देवस्थल और देवता

□ विनोद कुमार शर्मा ( पट्टू राही )
( एम० ए० पूर्वार्द्ध )

हमारे देश के जिन सुगम्य भागों में प्राचीन देवस्थल हैं, प्रायः लोगों को उनकी जानकारी है। परन्तु अपना देश इतना बड़ा है और उसके कितने ही भाग ऐसी जगहों में हैं, जो दुर्गम स्थानों में हैं। लोगों को उनकी पूरी जानकारी नहीं है। मणिपुर भी अपने देश का एक ऐसा ही प्रदेश है जहाँ की सभ्यता यद्यपि प्राचीन है पर देश के अन्य भागों के रहने वालों को उसकी जानकारी नहीं है।

मणिपुर के प्राचीन समय से लेकर अब से दो सौ वर्ष पहले तक के देवस्थलों व देवताओं की जानकारी इस प्रकार है :

## कौब्रू :

यह स्थान इम्फाल से उत्तर में करीब २० मील पर है। नटराज सदाशिव व उनकी अर्द्धांगिनी आदि-जननी महामाया की प्रणय-लीला व नृत्य लीला स्थली है। वैसे सारा का सारा मणिपुर ही उमा महेश्वर का लीला स्थल है। फिर भी, यह वह स्थान है। जहाँ लीला आरम्भ हुई। यद्यपि यह यहाँ का सर्वाधिक प्राचीन देवस्थल है, तथापि वहाँ अब तक कोई मन्दिर बना हुआ नहीं है। वैशाखी के बाद एक महीने तक लोग वहाँ जाते हैं। यह स्थान तीर्थ रूप में भी पूजनीय है। एक बड़ा तालाब पर्वत की चोटी पर है, यह यहाँ का सबसे ऊँचा पर्वत भी है। वर्षाऋतु आ

जाने पर वहाँ जाना कठिन हो जाता है। इस स्थान पर शंकर जी ने पार्वती को उनके आग्रह वश सृष्टि का आरम्भ, क्रम-विकास नृत्य के रूप में दिखाया था। आज भी इन पूर्वेश्वर कौब्रू महादेव की प्रार्थना में यहाँ के लोग इस प्रकार गाते हैं: 'अवांग कौब्रू असुप्पा। लोयनाई खुन्ता अहान्बा। चरिक मपाल्ल थाबिबा, नै थ्रै मऊ निङबिबा।"

## चिंगनुंहूत :

प्राचीन काल में सारा मणिपुर एक बड़ी झील के रूप में था। कौब्रू चोटी झील में सबसे ऊँची उठी हुई थी। इसलिए इसे शंकरजी को अपना नृत्य रचने के लिए नृत्य करने की जगह बनानी पड़ी। चारों ओर सैकड़ों मील फैली हुई पर्वतों की दीवार को शंकर जी ने अपने त्रिशूल से भेद दिया। शंकरजी का त्रिशूल पर्वत शृंखला को भेदता हुआ बर्मा में जा निकला — तथा वर्तमान मणिपुर उपत्यका बन गयी। वह स्थान जहाँ त्रिशूल ने भेदकर छेद बनाया था — "चिंनतुंहुत्" नामक देव स्थल है। यह इम्फाल से लगभग ४० मील दक्षिण में है।

## कामाख्या मन्दिर :

यह स्थान इम्फाल से दक्षिण में ७ मील दूर है, जिसे मणिपुर के निवासी "हियांथांग-लाईरेम्बी" कहते हैं। आजकल यहाँ एक मंदिर मंडप बना हुआ है, जिसे महाराज बोधचन्द्र ने पिछली लड़ाई के बाद बनवाया था। यहीं सती का मेखलाप्रदेश या योनि प्रदेश गिरा अतः यहाँ योनि पीठ है। कालिका पुराण में इसका वर्णन है और यह देवी के ५१ सिद्ध पीठों में से एक है।

## हैबोक महादेव :

कामाख्याजी के पूर्व में नदी के पार करीब आधा मील दूर उमानाथ-भैरव का मंदिर है जिसे यहाँ "हैबोक महादेव" कहते हैं। यह मूलत: पर्वत के निकले हुए हिस्से के ऊपर था, पर वह स्थान पिछले महायुद्ध में ध्वस्त हो गया। अब वह शिवलिंग नीचे पर्वत की तलहटी में है। लड़ाई के करीब १० वर्ष तक शिवलिंग बिना देख-भाल के रहा — तत्पश्चात एक महात्मा नारायण गिरि ने कई वर्ष तक प्रतिदिन पूजा आदि करते लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया और चारों कोनों में चार बड़े वृक्षों की डालियाँ रोप दीं, जो आज बड़े पेड़ के रूप में हैं। एक भक्त मंडली ने वहाँ एक शिवालय बना दिया है।

## नोङमाइजिं पर्वत :

नोङमाइजिं पर्वत पर वारुणी "नोङमाइजिंग" या उदयगिरि का वर्णन बाल्मीकिजी ने किया है। यहाँ किरात राज के वेश में शिवजीने अर्जुन से युद्ध किया था। यह स्थान इम्फाल से करीब ८ मील पूर्व में है। यहाँ पहले एक पेड के नीचे केवल शिवलिंग मात्र था। हर वर्ष वारुणी पर्व के दिन लक्खी मेला लगता है। करीब-करीब मणिपुर के सभी नवयुवक और नव-युवतियाँ यहाँ अवश्य ही पहुँच जाते हैं। शिवलिंग के पास ही वह स्थान भी है जहाँ महामाया पार्वती देवी, प्रणयलीला में मान प्रदर्शन करते हुये शिव के सम्मुख अन्तर्ध्यान हो गईं और वहाँ केवल एक योनि सदृश स्थान मात्र रह गया, जो यहाँ, "सुरुंग लाय" के नाम से जाना जाता है और जहाँ से निरन्तर टपकता द्रव रहता है। वही आगे चलकर 'चिंगोई' नदी बन जाती है। यह वही स्थान

है जिसका नाम लेकर लोग प्रयाग और काशी में हर वर्ष इसीदिन ( चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को ) गंगा में डुबकी लगाकर करोड़ सूर्य ग्रहणमें गंगा स्नान के फल का लाभ प्राप्त करने का महत्व मानते है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित मालवीय पंचांग में देखिए—"मधौ कृष्ण त्रयोदश्याँ शतभिषायाँ यदि जम्येत कोटि सूर्य ग्रहै: सभा। इस स्थान पर शिवपार्वती की प्रणय लीला और रास नृत्य भी हुआ, जिसे, यहाँ के लोग " नोङ्पोक निंथौ और पानथोईबी लीला कहते है। इस शिवलिंग की पूजा भगवान परशुरामजी ने की। अर्जुन ने यहाँ शिवाराधना करके शिवजी से वरदान स्वरूप अस्त्र प्राप्त किया। अर्जुन ने जिस जगह बैठकर तपस्या की थी, वह स्थान "अर्जुन शिला" भी इसके पास ही है। यहीं पर नागा लडकी "उलुपी" ने शिवजी से मणि प्राप्त की थी। शिवलिंग क पास ही सरस्वती कुण्ड और लक्ष्मी-कुण्ड भी हैं। यहाँ रह गये साधु महात्माओं का कहना है कि प्रत्येक अमावस्या का निशीथ में घंटा बजते हुये शेर पर बैठकर पार्वती जी आती हैं। श्रावण के महीने में वहाँ प्राय: लोग नहीं रहने पाते। कारण, उस समय मंदिर के आस-पास चारों ओर सर्प के आकार के छोटे-बड़े पौधे उग आते हैं। यहाँ इसे लिन-चैसू कहते हैं। बिच्छुओं के जैसे पौधों की भरमार हो जाती है जिसे यहाँ सन्थक कहते हैं, और ये पौधे अत्यन्त जहरीले होते हैं यहाँ तक कि उन पौधों से लगकर जो हवा बहती है वह भी जहरीली हो जाती है। लोग बीमार पड़ जाते हैं। इस समय सर्प और बिच्छुओं का भी बड़ा आगमन हो जाता है। श्रावण समाप्त होते ही शिवजी के ये भुजंग गायब हो जाते हैं। पिछले विश्वयुद्ध के बाद महाराज बोधचन्द्र सिंह जी ने इस शिवलिंग के स्थान पर एक शिवालय बना दिया था जो अब कुछ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इतना महत्वपूर्ण और सुंदर

सुरम्य स्थान होने पर भी यहाँ न कोई ढंग का मन्दिर है और न कोई धर्मशाला या ठहरने का पड़ाव ही है। वैसे यह स्थान बहुत ही सुरम्य और मनोहर तपस्थली है।

## मुंडूप महादेव :

यह स्थान इम्फाल से करीब ३० मील दक्षिण-पूर्व में है। इसे यहाँ के लोग 'थोंगाम मुन्डूप महादेव" कहते हैं। यहाँ आजकल एक शिवालय है। इसे भी महाराज बोधचन्द्र जी ने बनवाया था। यह शिवलिंग जीवित है और बढ़ता जा रहा है। शिवलिंग के पास ही नंदी, गणेश और पार्वती शिला-रूप में हैं, जो सभी एक ही अनुपात में बढ़ रहे हैं। शिवलिंग तो बढ़ते-बढ़ते बारह-तेरह फीट ऊँचा हो गया है। शिव लिंग पर जल या दूध चढ़ाने के लिये सीढ़ियाँ बनानी पड़ी हैं। हर रविवार को ही शिवालय खुलता है। परन्तु यहाँ भी न तो कोई ठहरने का स्थान है न धर्मशाला जैसा कुछ बना है और न ही पानी की सुबिधा है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि सारा पहाड़ लाल मिट्टी का है। कहीं कोई चट्टान या पत्थर नहीं दिखते, केवल मुन्डूप महादेव (शिवलिंग स्वरूप) तथा नन्दी, गणेश और पार्वती ( शिवारूप ) सभी वृहद शिला रूप में अत्यन्त स्निग्ध और चिकने हैं और बढ़ते जा रहे हैं।

## थांगजिंग :

यह महिरंग पुर या मोइरांग में है, जो इम्फाल से २६ मील दक्षिण में है। यह भगवान श्रीकृष्ण का ही रूप है। यह प्राचीन स्थान है और प्रमुख देव-स्थल है। शिव पार्वती ने जो

लीला नृत्य आदि किये उन्हें देखने की लालसा को न रोक सकने के कारण श्रीकृष्ण ने आकर देखा और संभवत: इसी लीला को श्रीकृष्ण ने राधा के साथ रास लीला के रूप में संजोया। इसी मोइरांग स्थान पर पिछले विश्वयुद्ध के दौरान नेताजी सुभाषचन्द्र ने भारत भूमि पर पहला तिरंगा झण्डा लहराया था, जहाँ स्मृति रूप में आइ० एन० ए० का सुभाष म्युजियम बना है।

वांगबेन :

यह इम्फाल से ४० मील दक्षिण पूर्व में "सुग्नू" नामक स्थान पर है। इन्हें हम वरुण देवता कहेंगे। लोगों में इनकी बड़ी मान्यता है। इनका यहाँ एक मन्दिर है, जहाँ समय-समय पर उत्सव, गान, नृत्य-लीला आदि होते रहते हैं। मणिपुर में अन्न उत्पादन का सारा श्रेय इन्हीं को दिया जाता है। इनके विषय में यहाँ अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं।

लोयरावपा :

यह इम्फाल से पश्चिम में पर्वतों पर स्थित हैं। यह पश्चिम दिशा के प्रमुख देवता माने जाते हैं। लोयबालाम या लोयाराम अर्थात अस्ताचल। इन लोयारम (अस्ताचल) पर रहने वाले एक राजा की पुत्री के रूप में महामाया ने अवतार लिया जो "पान्थोइबी" के नाम से प्रसिद्ध हुई और जिन्होंने पहले कहे गये "नोंपोक निंथौ' या पूर्वेश्वर शिव के साथ प्रणय-लीला नृत्य आदि किये।

मार्जिंग :

इनका स्थान इम्फाल के उत्तर में हेंगाङ नामक स्थान में है। मार्जिंग मणिपुर के उत्तरी भाग के देव कहे जाते हैं और

उस भाग के लोगों के आराध्य देव हैं। ये सभी बनस्पतियों के उत्तम फल उत्पादन करने वाले देवता माने जाते हैं। इन्हें कुबेर नाम दिया जाता है।

### ईशान :

मणिपुर के ईशान कोण में पर्वत पर इनका स्थान माना गया है। यहाँ इन्हें "चिंखै निंथौ" कहते हैं।

### सोरारेन :

सुरारेन, सुरेन अथवा इन्द्र का स्थान है। यह थौबाल के पास है। इम्फाल से कोई १२—१३ मील पर इण्डो-बर्मा रोड पर स्थित है।

### इङौरूप :

ईङौरूप या इङोरख महादेव इम्फाल से १२ मील उत्तर में है। यहाँ मच्छीन्द्रनाथ शिव ने महामाया पार्वती के साथ नृत्य लीला आदि किये और गोरखनाथ को भुलावे में रखकर उनकी परीक्षा ली ( देखिये-ईङौरख या इङौरूप की व्युत्पति—मच्छीन्द्र+ गङोरख प्रथम शब्द के अन्तिम वर्ण इन+द्वितीय शब्द के आदि वर्ण ङौरख ई+ङौरख जो आगे चलकर ईंगौरूप बन गया ) यहाँ मच्छीन्द्र नाथ की ८—९ फीट लम्बी पाषाण प्रतिमा है जिसे यहाँ के लोग साधु अचौबा ( बड़ा साधु ) तथा गोरख नाथ की ७—८ फीट लम्बी पाषाण प्रतिमा है जिसे यहाँ के लोग साधुमचा ( छोटा साधु ) कहते हैं। पहाड़ पर सुन्दर स्थान है और वैशाखी के बाद एक महीने तक ( १४ अप्रैल से १४ मई ) हर रविवार को मेला लगता है। पहले मच्छीन्द्रनाथ तथा पार्वती ने नृत्य आदि किये थे उसीके प्रतीक रूप आज भी लाय हराओबा होता है।

## श्रीगोविन्द जी :

शकाब्द १६६१ में श्रीगोविन्द जी की प्रतिष्ठा हुई। कहते हैं— स्वयं श्रीकृष्ण जी द्वारा स्वप्न में आदेश के अनुसार मूर्ति बनवाई गई। यह एक खास कटहल के पेड़ के काष्ठ से बनी मूर्ति है। यह कटहल "कायना" नामक पर्वत पर था। अब तो बाहर से आनेवालों के लिये सुगमता से दर्शन-परसन का स्थान यही मन्दिर समझिये। पहले मन्दिर की देखभाल महाराजा करते थे। अब यह सरकारी नियन्त्रण में है। वर्ष भर के सभी त्योहार पर्वों के समय श्रीगोविन्द जी के मन्दिर में पूजा-पाठ नृत्य-गान लीला आदि होते हैं और सविधि अष्टकाल पूजा होती है। मणिपुर के सारे मन्दिरों की पूजा श्रीगोबिन्द जी की पूजा व्यवस्था का अनुगमन करती है।

## श्रीविजय गोविन्द :

यह गोविन्द जी का समकालीन है। इम्फाल से थोड़ी दूर पर ही पश्चिम में सगोलबन्द में स्थित हैं। इनकी भी बड़ी मान्यता है। भादों सुदी एकादशी को यहाँ बड़ा मेला लगता है, जिसे यहाँ हेय्रु हिदोंबा कहते हैं। भगवान श्रीविजय गोविन्द की मूर्ति को नौका विहार कराया जाता है और नौका-दौड़ होती है। यह मूर्ति भी उसी कटहल के पेड़ से बनी है जिससे श्री गोबिन्द जी की मूर्ति बनी। इनकी प्रतिष्ठा अनन्तसाई मंत्री पुलसिबा ने की थी। होली के पाँचवे दिन चैत्र कृष्णा ५ मी को यहाँ होली का बड़ा भारी उत्सव होता है। ब्रज में इस दिन दाऊजी की होली होती है। यहाँ इस होली उत्सव को "हलङ्कार" कहते हैं। इतनी सुन्दर होली होती है कि लोग ब्रज की होली भूल जाते हैं।

## नित्याइनन्द महाप्रभु :

नित्याइनन्द महाप्रभु का स्थान इम्फाल में ही है। लम्फेल पात के रास्ते में पड़ता है। यह अरांबम नित्याइनन्द के नामसे प्रसिद्ध है। इनकी भी यहाँ पर्याप्त मान्यता है।

## श्री महाबली :

श्री महाबली मंदिर में हनुमान जी की एक बड़ी प्रतिमा तथा एक पंचमुखी हनुमान जी की छोटी मूर्ति है। इस स्थान को बकदण्ड-बन या "महाबली–उमंग" कहते हैं। यह स्थान काफी पुराना है। बन्दरों की भीड़ है। पहले यहाँ बन्दर बारूणी पर्वत से आया करते थे। जिस राह से बन्दर आते थे उसे "योंगलाल" सडक कहते हैं। आजकल तो बन्दरों ने बकदण्ड-बन को ही अपना घर बना लिया है। अब ये बारूणी पर्वत आने जाने का कष्ट नहीं उठाते। होली के दिन में श्रीगोविन्दजी के मन्दिर में होली गाने बाले सभी दल श्री गोविन्दजी के नैवेद्य प्रसाद के रूपमें होली की लीला का गान आदि श्री महाबली जी के प्रांगण में करते हैं।

## श्रीरामजी महाप्रभु :

श्रीरामजी महाप्रभु इम्फाल में ही हैं। श्रीगोविन्द के मंदिर के पूर्व में एक बहुत बड़ा गहरा तालाब है जिसे निंथेमपुखी कहते हैं। उसी तालाब के पश्चिमोत्तर कोण पर यह स्थान है। पहले मणिपुर में जब रामानन्दी मत प्रचलित था तब श्रीराम की उपासना प्रचलित थी। महाराज श्री गोपाल सिंह जी के राज्य कालमें शक स० १६३१ में श्री रामजी प्रभु तथा नरसिंह जी की प्रतिष्ठा हुई। मंदिर प्राचीन है और आजकल जीर्णशीर्ण अवस्था में है।

विष्णु मंदिर :

विष्णु मंदिर विष्णुपुर में है। यह स्थान इम्फाल से १७/१८ मील दक्षिण-पश्चिम में है। इसका काल शक १५२० है। यह महाराज कियाम्बा के राज्यकाल का है। यहाँ जो शालिग्राम शिला के रूप में विष्णु-प्रतिमा थी उसे बर्मा के राजा ने चुरा लिया। पर बाद में उसने फिर यहाँ लाकर प्रतिष्ठित किया। इन्हीं के नाम से इस स्थान का नाम विष्णुपुर पड़ गया।

श्रीगोपीनाथ जी :

श्री गोपीनाथ जी देवस्थान विष्णुपुर से करीब ३ मील आगे "निंथौखोङ" गाँव में है। यहाँ बड़ा मण्डप मंदिर है। यहाँ की मूर्त्ति भी उसी कटहल के पेड़ से बनी थी जिससे श्रीगोविन्दजी की मूर्ति बनी थी।

श्री अद्वैत महाप्रभु :

जिस कटहल क पेड़ से श्रीगोविन्दजी की मूर्ति बनी थी उसी पेड़ की जड़ से यह मूर्ति बनी और शक १७२० में प्रतिष्ठित हुई।

विष्णुगी फुरा :

विष्णुपुर के पास ही खागेम्बा महाराज के समय शक १५२० के लगभग एक विष्णु मंदिर बनवाया गया। वहाँ राजा ने तीन महीने रहकर प्रायश्चित किया और श्राद्ध आदि किये। यह स्थान विष्णुगी फुरा के नाम से प्रसिद्ध है।

## मदन मोहन जी का स्थान :

श्री मदन मोहन जी स्थान का प्रबन्ध हंगोइ बम चुड़ा सिंह के हाथ में था। यहाँ भी उसी कटहल के पेड़ से बनी मूर्ति है जिससे श्रीगोविन्दजी की प्रतिमा का निर्माण हुआ था। यह कोङबा बाजार से १ मील पूर्व में है।

इन देवस्थलों के अतिरिक्त यहाँ बहुत से "उमंग लाय/लाइरेम्बी" के स्थान हैं जहाँ हर वर्ष लाइहराओबा नृत्य होते हैं। इन लाइरेम्बी या उमंग लाइ के स्थानों पर प्रतिमाएँ नहीं होतीं वरन् प्रतीक रूपमें अन्य चीजें पूजा सामग्री आदि होती है।

(लेखक इस लेख की प्रेरणा के लिए आचार्य पूर्णानन्द सरस्वती जी का ऋणी है।)

# मणिपुर : किंचित् प्राचीन सन्दर्भ

☐ प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध'

मणिपुर भारत का पूर्वी सीमान्त राज्य है। इसकी स्थिति २३°७८'उ० से २५°६८'उ० और ९३°०३'पू० से ९४°७८' पूर्व में है। यह उत्तर में नागालैण्ड, दक्षिण में मिजोरम और बर्मा, पश्चिम में असम और पूर्व में बर्मा से घिरा हुआ है। इसकी भू-रचना मोटे तौर पर तश्तरीनुमा—चारों ओर ऊँची पहाड़ियाँ और बीच में समतल-सा मैदान—है। सम्प्रति इसका क्षेत्रफल २२,३५६ वर्ग किलोमीटर है जिसका लगभग दस प्रतिशत क्षेत्र—मात्र २०५० (१८००+२५०) वर्ग किलोमीटर मैदानी भाग है। सन् १९८१ ई० की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल आबादी १४,११,३७५ है जिसका लगभग दो तिहाई भाग मैदानी क्षेत्र में सीमित है।

मणिपुर नाम अति प्राचीन है, पर यह निश्चय करना अति दुष्कर है कि प्राचीन काल में इसका क्षेत्र कितना विस्तृत था। स्थानीय स्रोतों से मणिपुर के लिए प्रयुक्त होनेवाले अन्य नामों का भी पता चलता है। यथा—

१। तिल्लिकोक लैइकोइरेन
२। कङ्लैपाक
३। मुवापलि
४। वाङम् तेनथोङ्
५। चक्पा लङ्बा
६। पोईरै मैते
७। मैते लैपाक/मैत्रैबाक
८। मीरा पोङ्थोकलम्/पोङ्थोक
९। हान्ना सेम्बा कोन्ना लोइबा
१०। मयुङ् कुइत्रा लेनथोङ् माफेइ पक्पा

ये नाम स्थानीय निवासियों में सम्भवतः इस राज्य के विभिन्न अंचलों—विभिन्न समय में कबीलाइ शासन के छोटे-छोटे

क्षेत्रों--के लिए चलते होंगे। पड़ोसी निवासियों में भी मणिपुर किंचित् भिन्न भिन्न नामों से जाना जाता रहा है। यथा—

| | | |
|---|---|---|
| १। बर्मियों द्वारा | — | काथे |
| २। शानों द्वारा | — | काशे/कस्सरी |
| ३। आहोमों द्वारा | — | मेकले/मेखले |
| ४। कछारियों द्वारा | — | मोगले/मोगलन |

रेनेल ने इसे 'मेचले' नाम से लिखा है[1], पर हडसन ने इसका प्राचीन नाम 'महेन्द्रपुर' बताया है[2] एवं अनुमान किया है कि बभ्रुवाहन के समय से ही मणिपुर नाम प्रचलित हुआ होगा। वस्तुतः अतीत काल से ही इस राज्य की सर्वभारतीय संज्ञा मणिपुर रही है। महाभारत के आदिपर्व में यह 'मणलूरपुर' नाम से उल्लिखित है।

मणिपुर सम्बन्धी प्राचीनतम किंवा प्रथम उल्लेख महाभारत में मिलता है, तदुपरान्त श्रीमद्भागवत पुराण में। ग्यारहवीं शती एवं उसके उपरान्त रचित विभिन्न ग्रन्थों में मणिपुर नाम लगातार प्रयुक्त होते रहे हैं। इस दृष्टि से 'रुद्रयामल तंत्र', 'भविष्यपुराण', 'धरणी-संहिता', 'जैमिनी भारत', 'कृत्यकल्पतरू' (लक्ष्मीधर कृत), 'कुब्जिका तंत्र', 'कामाख्या तत्र', 'प्राणतोषिणी तंत्र', बभ्रुबाहनर युद्ध' (हरिवर विप्र कृत) इत्यादि के आवश्यक अंश देखे जा सकते हैं। यहाँ इन सब से उद्धरण प्रस्तुत करना अनावश्यक विस्तार होगा। मात्र महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराण से आवश्यक अंश उपस्थित करना ही यहाँ अलम् है।

महाभारत के दो पर्वों में मणिपुर सम्बन्धी उल्लेख हुआ है—आदिपर्व (२०७/१२-२३ एवं २०६/२३) में और आश्वमेधिक पर्व

( ७७/४६ से ८२ अध्याय तक ) में। प्रथम में अर्जुन-वनवास प्रसंग वर्णित है और द्वितीय में अश्वमेध यज्ञ के अश्व के अर्जुन द्वारा अनुगमन का। आगे दोनों अंशों का सार प्रस्तुत किया जाता है। यथा—

## आदिपर्व—

वनवास में अर्जुन भ्रमण करते हुए कलिंग के उपरान्त विभिन्न देशों, आश्रमों धर्मस्थानों को देखते हुए समुद्रतीर से मणलूरपुर गये। वहाँ के तीर्थों का दर्शन करते हुए वे मणलूरेश्वर चित्रवाहन के निकट गये। नगर में उनकी पुत्री चित्रांगदा को अर्जुन ने स्वेच्छानुसार घूमते हुए देखा। वे उसे देखकर कामासक्त हो गये। एतदर्थ उन्होंने राजा से निवेदन किया। राजा ने बताया कि उनके पूर्वपुरुष प्रभंकर निःसंतान थे। संतानप्राप्ति हेतु उन्होंने तपस्या कर शिव को प्रसन्न किया। शिव के वरदान स्वरूप तबसे उनके वंश में वंश रक्षार्थ एक ही संतान होने का क्रम चला आ रहा है। मुझे संतान रूप में मात्र यही कन्या - चित्रांगदा—मिली है। यही मेरा पुत्ररूप है। इसकी संतान से वंश-क्रम चले, यही इस कन्या का परिणय-शुल्क होगा जिससे वंश और देश की रक्षा होगी। उक्त शुल्क को स्वीकार कर लेने पर चित्रवाहन ने चित्रांगदा का परिणय अर्जुन से कर दिया। विवाहोपरान्त अर्जुन तीन वर्षों तक मण॰लूरपुर में ही रहे ( २०७/१२-२३ ) और दक्षिण समुद्र के तटवर्त्ती तीर्थों का दर्शन भी करते रहे। उक्त अवधि में ही उन्होंने पंचतीर्थों का भी सुधार किया ( २०८,२०९/२२ )। तदुपरान्त मणलूरपुर जाकर उन्होंने अपने नवजात पुत्र बभ्रुवाहन को देखा। उसे देखने के पश्चात् वे गोकर्ण की ओर चले गये ( २०९/२३-२४ )।

## आश्वमेधिक पर्व—

यज्ञ का अश्व विचरता हुआ मणिपुरपति के देश में गया ( ७७/४६ )। पिता अर्जुन का आगमन सुन बभ्रुवाहन ब्राह्मणों को

आगे कर अर्घ्य-उपहार ले उनके दर्शन-अभिनन्दन हेतु आया। क्षत्रिय-धर्म का स्मरण कर अर्जुन ने अभिनन्दन स्वीकार नहीं किया। युद्ध से विरति के कारण अर्जुन ने पुत्र बभ्रुवाहन को फटकारा। पुत्र को तिरस्कृत होते देख उलूपी पाताल भेद कर वहाँ आयी। उसने अपनी मोहिनी माया फैलायी और बभ्रुवाहन को पिता से युद्ध करने के लिए उत्तेजित किया। उत्तेजित किये जाने पर वीरवेश में सज्जित हो अपनी सिंह-चिह्नवाली ध्वजा[3] लिए हुए बभ्रुवाहन युद्ध के लिए तत्पर हुआ। उसने घोड़े को पकड़वा कर बँधवा दिया[4]। अर्जुन प्रसन्न हुए। पिता-पुत्र में युद्ध हुआ। दोनों मूर्च्छित होकर भूलुण्ठित हुए। समाचार पा चित्रांगदा भी आ गयी और पति एवं पुत्र दोनों को मृत समझ रूदन करने लगी ( ७८ )। शोकाकुल चित्रांगदा ने पति-पुत्र की हत्या का कारण उलूपी को समझा। वह रूदन करती हुई उसे फटकारती रही। उसने अपने प्राण त्यागने का निश्चय किया ( ७९ )। तभी बभ्रुवाहन की चेतना लौटी। प्राण त्यागने के लिए तत्पर माँ को देख उसे अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। उसने भी अपने प्राण त्यागने का निश्चय किया। एतदर्थ आचमन कर उपवास द्वारा शरीर को त्यागने का निश्चय कर वह वहीं बैठ गया ( ८० )। तभी उलूपी को मणि का ध्यान आया। बभ्रुवाहन को मणि सौंपती हुई उसने बताया कि पिता के वक्ष पर इसे रखने से उनकी चेतना लौट आयेगी। बभ्रुवाहन ने वैसा ही किया। मणि के स्पर्श से अर्जुन चैतन्य हुए। चैतन्य होते ही अर्जुन ने पूछा कि उलूपी और चित्रांगदा यहाँ क्यों आयी हैं ( ८१ )। तदुपरान्त उलूपी ने अपनी मोहिनी माया का स्पष्टीकरण किया। उसने बताया कि महाभारत युद्ध में अर्जुन द्वारा भीष्म पितामह का वध अधर्माचरण से किये जाने के कारण गंगा एवं वसुओं ने उन्हें शाप दिया था। उक्त शाप की बात मैंने पिता नागराज को बतायी। शाप की शांति और अधर्माचरण

के पाप से मुक्ति हेतु ही उन्हें पुत्र बभ्रुवाहन से युद्ध में पराजित और मृत्त ( मूर्च्छित ) होना पड़ा। इससे पापशांति हो गयी है। अब वे शापमुक्त हो चुके हैं। मणि-स्पर्श से उन्हें नया जीवन मिला है। तदनन्तर मणिपुर-नरेश ने बभ्रुवाहन को आगामी चैत्रमास में आयोजित होनेवाले युधिष्ठिर के अश्वमेध-उत्सव में दोनों माताओं सहित भाग लेने का आदेश दिया। बभ्रुवाहन ने आज्ञा शिरोधार्य करते हुए कहा कि उक्त अवसर पर मैं ब्राह्मणों को भोजन परोसने का कार्य करूँगा। उसने अर्जुन से नगर में रात्रि-विश्राम कर प्रातः वहाँ से प्रस्थान करने का आग्रह किया। अर्जुन ने उसे यह कहते हुए स्वीकार नहीं किया कि जब तक मेरा व्रत पूर्ण नहीं होता तब तक मैं तुम्हारे नगर में प्रवेश नहीं कर सकता। अश्व इच्छानुसार विचरता है। मुझे इसी का अनुगमन करना है। तत्पश्चात् वे पुत्र बभ्रुवाहन द्वारा पूजित और दोनों भार्याओं द्वारा अनुज्ञात होकर अश्व का अनुगमन करने लगे ( ८२ )।

पाण्डव-वंश-वर्णन के क्रम में श्रीमद्भागवत पुराण में मणिपुर सम्बन्धी मात्र निम्नांकित श्लोक मिलता है—

> इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम्।
> मणिपुरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ९ २२।३२

( उलूपी के गर्भ से इरावान् और मणिपुर-नरेश की पुत्री से बभ्रुवाहन का जन्म हुआ। चूँकि यह बात पहले से ही तय थी, इसलिए बभ्रुवाहन अपने नाना का ही पुत्र माना गया। ) इससे अनुमित होता है कि अर्जुन से चित्रांगदा के विवाह-शुल्क का पता भागवतकार को भी था।

कुछ विद्वानों ने महाभारत-वर्णित मणिपुर की स्थिति भ्रमवशात् वर्तमान मणिपुर से भिन्न-ओड़िसा में-स्वीकार की है[5]। अत्याधुनिक अनुसंधित्सुओं ने पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसे निरस्त किया है। यहाँ

भूमि को आलोकित करनेवाले के रूप में हुआ है, सम्भवतः वही (नाग यानी नग-निवासी, पर्वत निवासी अनन्त) मणिपुर का प्रथम राजा था। उसने नागवंशीय शासन की यहाँ नींव डाली होगी। प्रजा में अपने प्रथम नरेश-ईश्वर के प्रतिरूप—के प्रति श्रद्धा का होना अवश्यंभावी है। मणिपुरी घरों के मुख्य प्रवेश द्वार एवं अन्य पवित्र स्थलों पर नागचित्रों के बनाने, नाग को पवित्र और देवरूप जानकर अवध्य मानने के मूल में आज भी सम्भवतः वही भावना सक्रिय है। तदुपरान्त यहाँ गन्धर्ववंशियों का शासन हुआ। गन्धर्ववंशी चित्रवाहन-पुत्री चित्रांगदा का ही विवाह अर्जुन से हुआ था। उनका राजकीय चिह्न सिंह (बभ्रुवाहन की ध्वजा सिंह चिह्नांकित थी) था। आज भी मणिपुर का राजकीय चिह्न सिंह ही है। चित्रवाहन ने अपने पूर्वपुरुष प्रभंकर का उल्लेख किया है। उक्त उल्लेख से यह पता नहीं चलता है कि प्रभंकर से चित्रवाहन में कितनी पीढ़ियों का अन्तर था। यों पौराणिक स्रोतों से चित्रवाहन के पूर्व गन्धर्ववंशी नरेशों में क्रमशः चित्रराज, चित्रसर्व, चित्रबीज, चित्रध्वज और चित्रकेतु के नाम मिलते हैं। प्रभंकर इनसे भी पहले हुए होंगे। चित्रवाहन के पश्चात् चित्रांगदा पुत्र बभ्रुवाहन, तत्पुत्र सुप्रवाहु और तत्पुत्र यविस्थ अथवा जविस्थ का पता चलता है। कुछ इतिहासकार यविस्थ अथवा जविस्थ को पाखङ्बा से अभिन्न मानने के पक्षधर हैं। किन्तु वैसा मानना संगत नहीं होगा। महाभारत कालीन बभ्रुवाहन-पौत्र यविस्थ को सन् ३३ ई० के पाखङ्बा से अभिन्न मानना बौद्धिक अजीर्णता कहा जायेगा। सम्प्रति यही स्वीकार करना श्रेयस्कर है कि यविस्थ से पाखङ्बा तक का ऐतिहासिक सूत्र सर्वथा अज्ञात है।

एक अन्य परम्परा से बभ्रुवाहन और यविस्थ के मध्य तेरह पीढ़ियों के नाम गिनाये जाते हैं। इनमें केवल दो नाम—कल्पचन्द्र

और शक्ति—संस्कृत परम्परा के हैं एवं शेष तिब्बती-बर्मी। सम्भवतः इस सूत्र (तिब्बती-बर्मी परम्परा के नाम) को पकड़ कर ही यविस्थ अथवा ज़विस्थ को पाखङ्बा से अभिन्न मान लिया जाता है। स्थानीय इतिहास में पाखङ्बा गुरु शिदबा (शिव का पुत्र कहा गया है। स्थानीय इतिहास के अनुसार पाखङ्बा ही यहाँ का प्रथम नरेश (सन् ३३-१५४ ई०) है। यहाँ का क्रमबद्ध इतिहास उसी के समय से प्राप्त है। उपरि उल्लिखित यविस्थ अथवा ज़विस्थ से प्रथम नरेश पाखङ्बा को निश्चय ही भिन्न व्यक्ति होना चाहिए। यों भिन्न-भिन्न समयों में एक ही नाम के दो राजाओं का होना न तो असम्भव है और न असंगत। दोनों को एक ही व्यक्ति मानने में सबसे बड़ी खाई काल-व्यवधान है जिसे मात्र तेरह पीढ़ियों के काल-मान से पाटना असम्भव है। अस्तु, इस दृष्टि से भी यही स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि यविस्थ (अथवा पाखङ्बा प्रथम?) प्रथम ज्ञात नरेश पाखङ्बा (सन् ३३-१५४ ई०) के मध्य का ऐतिहासिक सूत्र अभ्यावधि सर्वथा अज्ञात और अन्धकारपूर्ण है। सन् ३३ ई० के पश्चात का इतिहास बहुत-कुछ व्यवस्थित है और वह इस आलेख की सीमा के बाहर है।

---

सन्दर्भ एवं पादटिप्पणियाँ—

1 Rennell's Memoir and Maps of India

2 T. C Hodson : The Meitheis, PP. 2-5

3 राजकीय चिह्न के रूप में सिंह का प्रचलन सम्भवतः तभी से आज तक मणिपुर में चला आ रहा है।

4 वही स्थान आज सगोलबन्द के नाम से जाना जाता है।

5 क. Edward Gait : A History of Assam, Calcutta, 1963, P. 322

इतना ही अलम् है कि ईसा पूर्व तीसरी शती में कलिंगों ने जब गंगा के काँठे पर भी प्रभुत्व जमा लिया था, तभी उनकी कुछ टोलियाँ श्रीहट्ट और मणिपुर के रास्ते बर्मा में भी प्रविष्ट हुई थीं। अपनी प्रभुता में उन्होंने बर्मा-मणिपुर क्षेत्र में भी त्रिकलिंग—चिन्दविन घाटी में तुगरा, डिगलिपटन और मारेउरा ( जिसकी पहचान मणिपुर के रूप में की जाती है )—की स्थापना की थी। परवर्त्ती आक्रामकों ने उन्हें शीघ्र ही—सम्भवतः एक शती पश्चात् ही—सुदूर दक्षिण भारत तक खदेड दिया। पलायितों में से ही कुछ पुनः कलिंग—ओड़िसा—में जम गये और यहाँ की स्मृति में ही उन्होंने नये राजधानी नगर का नाम मणिपुर रखा। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि उनके इतिहास-पुरुषों में न तो बभ्रुवाहन का उल्लेख मिलता है और न उनके द्वारा पूजित देवी-देवता यहाँ के अनुरूप हैं।

वस्तुतः महाभारत-वर्णित मणिपुर वर्तमान मणिपुर ही है। इसकी पुष्टि न कवल स्थानीय विद्वानों के विचारों से होती है[6] बल्कि बहिर्भारतीय प्रमाण भी इसे पुष्ट करते हैं। टालमी द्वारा वर्णित पूर्वांचलीय भारत के विभिन्न अंचलों की पहचान करते हुए जिरिनी आदि ने 'मारेउरा' ( MAREURA ) की पहचान मणिपुर के रूप में ही की है[7]। प्राचीनकाल से ही गंगा के काँठे से मणिपुर होते हुए चीन के एक व्यापारिक मार्ग का पता चलता है[8]। वही मार्ग बर्मा के व्यापारिक मार्ग से भी जुड़ता था जिसका प्राचीनतम उल्लेख चीनी यात्री चाङकियेन ( Changkien ) ने भी किया है। पी० पिलेट के अनुसार ईसापूर्व दूसरी शती में वह मार्ग को चीन के यून्नान प्रान्त से जोड़ता था[9]। परवर्त्ती काल में अलबरुनी ने भी मणिपुर की वर्तमान स्थिति का ही उल्लेख किया है[10]। बर्मी राजाओं की ऐतिहासिक विवरणावली 'महाराजवंश' से

पता चलता है कि भारत से बौद्ध धर्मप्रचारकों की टोलियाँ मणिपुर के रास्ते ही बर्मा गयी थी एवं शाक्य वंशी नरेश धनराज ने ईसापूर्व ५५० सन् मणिपुर का शासन सँभाला था। उसने उत्तरी बर्मा के कुछ क्षेत्र को जीतकर अपने राज्य मणिपुर में मिला भी लिया था[11]।

महाभारत के आदिपर्व में यह 'मणलूरपुर' नाम से उल्लिखित है। किन्तु आश्वमेधिक पर्व में 'मणिपुर' नाम से। महाभारतीय उल्लेख के अनुसार उलूपी द्वारा प्रदत्त मणि का बभ्रुवाहन द्वारा मूर्च्छित अर्जुन के वक्ष से स्पर्श कराये जाने के पश्चात् उन्हें चैतन्य प्राप्त हुआ था। असम्भव नहीं कि उक्त घटना की स्मृति स्थिर रखने की दृष्टि से ही इसका नाम 'मणलूर' से 'मणिपुर' कर दिया गया हो। हडसन को यह अस्वीकार्य नहीं है। मणिपुर नामकरण के लिए एक स्थानीय मिथकीय उल्लेख को भी महत्त्व प्राप्त है। कहा जाता है कि वर्तमान मणिपुर, कछार, त्रिपुरा आदि का अधिकांश भाग जलमग्न था। तभी नौ देवताओं (लाइनुङथौ) और सात देवियों (लाइनुरा) के सम्मिलित प्रयास से चौंसठ पहाड़ियाँ निर्मित हुईं। तदुपरान्त एक पहाड़ी (नौङमाइजिङ) पर शिव (गुरु शिदबा) और पार्वती (लैमरेन) ने लास्य-नृत्य किया। उक्त नृत्य में अन्य देवताओं ने भी भाग लिया था। शिव ने ही त्रिशूल से पहाड़ी को भेदकर पानी भी बहा दिया जिससे मणिपुर घाटी निथर आयी। नृत्यभूमि को मणि की प्रभा से आलोकित किया था अनन्त नाग ने। फलतः मणि-आलोकित भू-भाग की अभिधा मणिपुर हुई और उक्त नृत्य की स्मृति में देव नृत्य - लाइहरओबा— का प्रचलन हुआ।

सृष्टि-प्रसार और नामकरण सम्बन्धी उपरि संकेतित मिथक में जिस अनन्त नाग का उल्लेख मणि द्वारा शिव-पार्वती की नृत्य-

ख N. L Dey : Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India,
Delhi, 1927, P. 85.

ग. नागेन्द्रनाथ बोस, हिन्दी विश्वकोश।

[6] क अतोम बापू शर्मा--मणिपुर का सनातन धर्म, पृ० २०-२३
—मैतेइ कीर्त्तन, पृ० ८०-८२
—मणिपुर इतिहास, पृ० २३८-३१

ख. W. Yumjao Singh, An Early History of Manipur, PP. 5-16, 24-25, 30-33.

ग. L. Iboongohal Singh, Introduction to Manipur, PP. 6-8.

घ R K. Jhalajit Singh, A short Histoty of Manipur, PP. 5-8

[7] क Gerini : Researches on Ptolemy's Geography of Eastern Asia, London, 1909, P. 28.

ख. Mc Crindle, J. W. : Ancient India as described by Ptolemy, Calcutta, 1927, PP. 231-34.

ग. Gazetter of Burma, Delhi 1983, Vol. I. PP. 236-37.

घ. A. R. Borooah : Ancient Geography of India, P. 70

[8] P. C Bagchi : India and China, P 16

[9] P Pelliot ( पी० पेलिओट ) ने चाङ्कियेन के उपलब्ध उल्लेखों के आधार पर व्यापारिक मार्ग का वर्णन किया है।

[10] अलबरूनी ने 'किताब-उल-हिन्द' में मणिपुर की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया है।
—द्रष्टव्य E. C. Sachau : Alberuni's India, Vol. I., PP. 201, 299-303.

[11] J. Roy : History of Manipur, P. 5.

# खेलों की जीवन्त भूमि : मणिपुर

☐ इबोहल सिंह काङजम

किसी जाति की पहचान उसकी अपनी संस्कृति से होती है। मणिपुर आकार में छोटा होते हुए भी अपनी अलग और विशिष्ट संस्कृति के लिए विख्यात है। इसके नृत्य और संगीत का तो अपना अनूठा रूप है ही। उसी प्रकार मणिपुर के पारम्परीण खेल भी बहुत निराले हैं।

आदिकाल से चले आ रहे खेलों में मीतै जाति की वीरता एवं युद्ध-कौशल की झलक दिखाई पड़ती है। मीतै प्रारम्भ से ही बहुत बड़े योद्धा होते आए हैं। प्राचीन काल में बर्मा और अन्य पड़ोसी देशों से उनका संघर्ष होता रहा। अनेक बड़े-बड़े भयंकर युद्ध होते रहे। पुराने समय में घर का प्रत्येक पुरुष योद्धा होता था और वह जीवन भर रण-कौशल का अभ्यास करता था। सिर्फ पुरुष ही नहीं, महिलाएँ भी युद्ध-विद्या सीखती थीं, ताकि पुरुषों की अनुपस्थिति में देश की रक्षा कर सकें। इसलिए चाहे पुरुष हो या महिला, बच्चे हों या बूढ़े, प्रत्येक मीतै के खून में युद्ध का रंग भरा हुआ था और रण-कौशल का अभ्यास नित्य-क्रिया का एक अभिन्न अंग था। इसका प्रभाव उनके पारम्परीण खेलकूद पर पड़ना स्वाभाविक था। आज भी उनके खेलों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ कुछ मणिपुरी खेलों का परिचय देना ही हमारा उद्देश्य है।

मुक्ना—

मुक्ना मणिपुर के बहुत पुराने खेलों में से एक है। इसे मणिपुर की कुश्ती कहा जा सकता है। इसमें कुश्ती की तरह

शक्ति एवं कौशल की परख होती है। मुक्ना खेलने के लिए प्रत्येक खिलाड़ी को घुटने के ऊपर तक ही धोती पहननी होती है और चादर को लड़ी बनाकर कमर में कस कर बांधा जाता है। इस खेल के लिए एक रेफ़री रहता है। रेफ़री की उपस्थिति में दोनों खिलाड़ी आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। दोनों झुक कर अपने-अपने हाथ से एक दूसरे की कमर पर बंधी चादर की लड़ी को पकड़ लेते हैं और अपने अपने सिर एक दूसरे के कंधे पर रखते हैं। जब रेफ़री खेल शुरू करने के लिए इशारा देता है तब दोनों का मुकाबला शुरू होता है। मुकाबले में दोनों खिलाड़ी अपने-अपने पैर एक दूसरे के पैर पर अटका कर गिराने की कोशिश करते हैं। पैर पर पैर अटकाने के भी कई तरीके होते हैं। अटकाने की इस क्रिया को 'लौ" कहा जाता है। इस खेल में उठा-पटक भी होती है। कोई खिलाड़ी दूसरे को गिराने के लिये उठाता है तो उठा हुआ खिलाड़ी उठानेवाले पर एकदम चिपक जाता है, ताकि उठानेवाला उसे पटक न सके या गिरते समय वह ऊपर हो जाए और उठाने वाला नीचे। लड़ते समय यदि दोनों खिलाड़ी बगल के बल गिर जाते हैं तो जीत किसी की नहीं मानी जाती। दुबारा लड़ना पड़ता है। गिरते या पटकते समय नीचे वाला खिलाड़ी अपने को पलट कर यही कोशिश करता है कि उसकी पीठ जमीन को छू न जाए। क्योंकि इस खेल में जिसकी पीठ पहले जमीन को छू जाएगी, उसे हार माननी पड़ती है। इसलिए कुशल खिलाड़ी सदा यही कोशिश करता रहता है कि अगर गिर भी जाए तो उस की पीठ जमीन को छू न जाए और बदले में गिराने वाले की पीठ ही पहले जमीन को छू ले। इसी खेल में मुकाबले के बीच अगर किसी की कमर पर बंधी चादर की लड़ी ढीली हो जाती तो रेफ़री दोनों को छुड़ा देता है और उसे ठीक कराकर लड़ाता है। यदि कोई खिलाड़ी अपने कई प्रतिद्वन्द्वियों को हरा कर

जीत हासिल करता है और उ चुनौती देनेवाला कोई भी नहीं रहता तो उसे उस वर्ष विशेष का "मुक्ना-जात्रा" घोषित किया जाता है। "जात्रा" का अर्थ होता है चेम्पियन।

मुक्ना की एक विशेषता यह है कि "लाई हराओबा" अर्थात् कुल देवी-देवता या ग्राम देवी-देवता की पूजा के समय अन्तिम दिन में यह खेल देवी-देवता के विग्रह क सामने जरूर होत ह। इस खेल क अभाव में पूजा के अन्तिम दिन का कार्यक्रम अधूरा माना जाता है।

## खोङ काङजै—

खोङ काङजै भी मीतै जाति के बहुत ही प्राचीन खेलों में से एक है। इसे "मणिपुरी हॉकी" कहा जा सकता है इस खेल के लिए दोनों पक्षों में सात सात खिलाडी होते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी के पास एक-एक डण्डा होता है, जो बाँस या बेंत का बना होता है। यह डण्डा चार या साढ़े चार फुट लम्बा होता है और एक ओर थोड़ा बड़ा और टेढ़ा होता है। इस डण्डे को मणिपुरी में "काङजै" कहा जाता है। इस खेल में खिलाड़ी "काङजै" से गेंद को मारते हैं। यह गेंद मणिपुरी में "काङदूम" कही जाती है, जो बाँस की सूखी जड़ से बनी होती है।

खोङ-काङजै का खेल लगभग १८४ मीटर लम्बे और ९२ मीटर चौड़े समतल मैदान में खेला जाता है। इस खेल के लिए फुटबोल और हॉकी की तरह गोल का खंभा नहीं होता। दोनों तरफ की अन्तिम सीमा गोलरेखा होती है। यह खेल एक रेफरी जिसे मणिपुरी में "काङजै ङाकपा" कहा जाता है, के द्वारा मैदान के बीचों-बीच काङदूम याने ( गेंद को ) ऊपर फेंके जाने से शुरू होता

है। इस खेल में खिलाड़ियों की ताकत, एवं चतुराई का प्रदर्शन होता है। इस में एक खिलाड़ी दूसरे खिलाड़ी को उसका कपड़ा या हाथ पकड़ कर या दूसरे के पैर में अपना पैर अटकाकर गिरा सकता है। जब कोई खिलाड़ी गेंद को मारने के लिए काङ्जै उठाता है तब दूसरा खिलाड़ी अपने काङ्जै को पहले के काङ्जै पर अटका कर रोक सकता है। यहाँ तक कि मुक्ना की तरह दूसरे की कमर पकड़ कर तथा उठाकर जबरदस्ती गिरा भी सकता है और गेंद को काङ्जै से मार कर या अपने हाथ से उठा कर गोल-रेखा की तरफ भाग सकता है। जब एक खिलाड़ी गेंद को हाथ में लेकर भाग जाता है तब दूसरा खिलाड़ी उसके हाथ को काङ्जै से नहीं मार सकता। वह उसे गिरा कर या पकड़कर गेंद छीन सकता है। यदि कोई खिलाड़ी गेंद पकड़ कर भाग जाता है और दूसरे दल के प्रतिद्वन्द्वी उसे छीनने के लिए उसका पीछा करते हैं तो पहले दल के दूसरे खिलाड़ी पीछा करने वाले खिलाड़ियों को पकड़ कर रख सकते हैं या किसी न किसी उपाय से उनको रोक रख सकते हैं। उसी समय गेंद ले जाने वाला खिलाड़ी गोल-रेखा की तरफ आसानी से भाग सकता है। जब वह गोल-रेखा तक पहुँच जाता है तब उसके दल का गोल माना जाता है।

खोङ-काङ्जै पुरुषत्व का खेल है और खिलाड़ियों को मुक्ना और तलवारबाजी की कला में पारंगत होना जरूरी है।

## शगोल काङ्जै--

'शगोल काङ्जै" जिसे अंग्रेजी में पोलो कहा जाता है मणिपुर का एक प्राचीनतम खेल है। इसका प्रारंभ मणिपुर में ही हुआ था और अब यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया है। "शगोल

काङजै" का शाब्दिक अर्थ है—"शगोल" याने घोड़ा और "काङजै" याने (मणिपुरी ) हॉकी अर्थात् घोड़े पर बैठ कर खेले जाने वाला मणिपुरी हॉकी का खेल।

शगोल काङजै का जन्मदाता "मार्जिङ्" नामक देवता माना जाता है। मिथक में देवताओं के बीच यह खेल खेले जाने की बात कही गई है। ऐसा विश्वास है कि मनुष्य ने यह खेल देवताओं से सीखा है। ५००० ईसवी पूर्व राजा काङ्बा के समय यह खेल अच्छी तरह खेला जाता था, ऐसा विश्वास किया जाता है। किन्तु इस का अत्यधिक विकास तथा लोकप्रियता राजा कियाम्बा (१४६७-१५०८ ईसवी) तथा राजा खागेम्बा (१५९७-१६५२ ई०) के समय में ही हुई। सन् १८६३ में कलकत्ते में मणिपुर के राजा की ओर से इस खेल का एक प्रदर्शन हुआ। इस प्रदर्शन से अंग्रेज दर्शक इतने प्रभावित हुए कि वे इस खेल को सीखने लगे और उन की ओर से हर जगह इस का प्रदर्शन हुआ। बाद में यह एक विश्व-प्रसिद्ध खेल बन गया।

शगोल काङजै के लिए दोनों दलों में सात-सात खिलाड़ी होते हैं। यह खेल एक खेला मैदान में खुले जाता है। इस खेल के लिए गोल का खंभा नहीं होता; खोङ्-काङजै की तरह सीमा-रेखा ही गोलरेखा होती है। दोनों ओर के खिलाड़ी किसी भी गोलरेखा में गेंद को ले जा सकते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी के हाथ में एक-एक काङजै होता है। इस काङजै का हत्था बेंत का होता है और गेंद मारने के सिरे का हिस्सा लकड़ी का होता है। लकड़ी का यह हिस्सा थोड़ा टेढ़ा होता है। गेंद जिसे मणिपुरी में "काङ्द्रम" कहा जाता है, बाँस की सूखी जड़ से बनी होती है और बहुत हलकी होती है। प्रत्येक खिलाड़ी घुटने तक धोती पहनता है और सिर पर एक बड़ी पगड़ी धारण करता है। पैर पर नीचे से घुटने

तक कपड़ा बाँधा जाता है, ताकि पैर पर गेंद या काङ्जै की मार लगने पर चोट न लगे। घोड़े की पीठ पर इस खेल के लिए विशेष रूप से तैयार किया हुआ जीन बाँधा जाता है। खेल के दौरान एक खिलाडी दूसरे खिलाड़ी के नजदीक नहीं जाता, क्योंकि उस दूसरे खिलाड़ी के काङ्जै की मार से चोट लग सकती है। इसलिए काङ्जै से काङ्जै मार कर या अटका कर गेंद छीनने की कोशिश करता है। किन्तु कुशल खिलाड़ी तो कंधे से टकरा कर भी खेलते हैं। इस स्थिति में भी कोई कुशल खिलाड़ी तो काङ्जै के सहारे गेंद को उठा कर हाथ में लेते हुए, फिर उसे नीचे गिराए बिना काङ्जै से मार-मार कर गोलरेखा की ओर ले जाता है। इस खेल के लिए प्रत्येक खिलाड़ी को एक अच्छा घुड़सवार होना आवश्यक है।

## युबी लाकपी--

युबी लाकपी उतना प्राचीन खेल नहीं है। फिर भी यह मणिपुर का एक स्थानीय खेल है। युबी का अर्थ है नारियल और लाकपी का अर्थ है छीना-झपटी करना। याने इस खेल में नारियल की छीना-झपटी होती है। यह खेल दो दलों के बीच खेला जाता है। प्रत्येक दल में सात-सात खिलाड़ी होते हैं। इस खेल का आरम्भ मैदान में किसी एक जगह रेफरी द्वारा नारियल फेंके जाने से होता है। कोई एक खिलाड़ी उस नारियल को लेकर भाग जाता है। दूसरे दल के खिलाड़ी उस से नारियल छीनने की कोशिश करते हैं। इस स्थिति में पहले का खिलाड़ी अपने दल के किसी खिलाड़ी को नारियल दे देता है। अगर दूसरे दल का कोई खिलाड़ी नारियल छीनने में सफल हो जाता है तो वह नारियल को लेकर भाग जाता है। फिर दूसरे दल के खिलाड़ी उस से नारियल छीनने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार दोनों पक्ष के खिलाड़ी आपस में

नारियल की छीना-झपटी करते हैं। नारियल को सरसों के तेल से भिगो दिया जाता है ताकि उस में चिकनाहट पैदा हो जाए और छीना-झपटी में नारियल बार-बार हाथ से फिसल जाए। खेल के मैदान की दूसरी तरफ एक आयताकार जगह होती है, जिसके बीचों बीच गोलरेखा खिंची रहती है। इसी आयताकार जगह को "बाक्स एरिया" कहा जाता है। प्रत्येक खिलाड़ी नारियल को इस जगह तक ले आने की कोशिश करता रहता है और यहाँ पहुँचने पर वह जल्दी गोलरेखा को पार कर लेता है। इस प्रकार जब कोई खिलाड़ी नारियल को लेते हुए इस आयताकार जगह तक आकर गोलरेखा को पार कर लेता है तब उसके दल की जीत मानी जाती है।

काङ —

काङ मणिपुर के प्राचीन खेलों में से एक है। यह यहाँ का एकमात्र पारम्परीण भीतरी खेल है। यह खेल कब प्रारम्भ हुआ ? कोई भी नहीं कह सकता। किन्तु लोगों का विश्वास है कि यह देवताओं का खेल था और देवताओं से मनुष्य ने इसे सीखा है। मिथक और लोक कथाओं में यह खेल खेले जाने का उल्लेख मिलता है। १२वीं सदी में यह मणिपुर का काफी लोकप्रिय खल रहा। यह ३० से ४२ फुट लम्बी और १६ से १८ फुट चौड़ी छत लगी हुई एक साफ सुथरी समतल आयताकार भूमि पर खेला जाता है। इस जगह को मणिपुरी में "काङशङ्" कहा जाता है। काङ्शङ् का अर्थ है—काङ् खेलने का भवन।

"काङ् एक हथियार का नाम है जो इस खेल में प्रयोग किया जाता है। यह लाख और कपास मिलाकर बनाया जाता है अथवा भैंस के सींग का होता है। वह आकार में अण्डाकार होता है यह ५ या ६ इंच लम्बा, ४ इंच चौड़ा और एक तिहाई इंच मोटा

होता है। इस का एक पहलू मुँह होता है और दूसरा पीठ। यह बहुत चिकना होता है। खेल के दौरान इसमें और अधिक चिकनाहट पैदा करने के लिए मोम लगे कपड़े से बार-बार घिसाई होती है।

काङ् दो दलों के बीच खेला जाता है। प्रत्येक दल में सात-सात खिलाड़ी होते हैं और वे आमने सामने बैठकर खेलते हैं। दोनों दलों के बीच सात सीधी रेखाएँ खींची जाती हैं। रेखाएँ खींचने के लिए मैदा या चावल का आटा प्रयोग किया जाता है। इन रेखाओं के दोनों सिरों में चौड़ाई के बराबर एक-एक रेखा होती है, जिसे लक्ष्यरेखा कहते हैं। प्रत्येक रेखा के दोनों सिरों पर जहाँ लक्ष्यरेखा होती है वहाँ दो लक्ष्य रखे जाते हैं। जो लक्ष्य सीधी रेखा के आमने-सामने होते हैं, उन्हें "लम्था काङ् खिल" याने लम्था का लक्ष्य कहते हैं और उसी जगह को "लम्था काङ्खुल। सीधी रेखाओं के बगल में लम्था काङ्खुल से १० से १२ इंच की दूरी पर जो लक्ष्य रखे जाते हैं, उन्हें "चेकफै काङखिल" याने चेकफै का लक्ष्य कहते हैं और उसी जगह को "चेकफै काङ्खुल"। खिलाड़ी को पहले चेकफै मारना होता है, बाद में लम्था। दो चेकफै मारे जाने के बाद नियमानुसार एक लम्था मार कर एक गोल माना जाता है। लक्ष्यरेखा के पीछे दो फुट की दूरी पर सीमारेखा होती है। फेंका हुआ काङ् का जब इस रेखा को पार कर लेता है तभी दूसरे दल के खिलाड़ी उसे पकड़ सकते हैं।

चेकफै में खिलाड़ी को अपने प्रतिद्वन्द्वी के सामने चेकफै काङ्खुल में रखे लक्ष्य को काङ् से मारना होता है। यह लक्ष्य लाख का बना हुआ या मार्बलनुमा कोई चीज होती है। इस लक्ष्य को मारने के लिए खिलाड़ी काङ् पकड़कर पहले खड़ा होता है। बायाँ हाथ अपनी दोनों जाँघों के बीच

रखता है। दायाँ हाथ काङ को पहले दोनों घुटनों के बीच ले जाता है तथा बाद में सीधे चेक्फै लक्ष्य की ओर फेंक देता है। फेंके गए काङ् को खेल-मैदान की लम्बाई के आधे से तीन चौथाई के बीच की दूरी पर गिराकर दौड़ाना होता है। काङ् का मुँह ऊपर की तरफ होना चाहिए। काङ् मैदे या आटे की रेखा पर सीधे जाता है और लक्ष्य को मारता है। इस प्रकार खिलाड़ी का खड़े होकर काङ से लक्ष्य को मारना चेक्फै कहा जाता है। यदि खिलाड़ी काङ से लक्ष्य को मार नहीं सकता तो वह अपनी जगह बैठ जाता है और दूसरे खिलाड़ी बारी-बारी से यही कोशिश करते हैं।

एक ही दल के खिलाड़ियों के द्वारा दो चेक्फै मारे जाने के बाद लम्था मारना होता है। खिलाड़ी बैठकर काङ को अपनी रेखा पर रखकर निशान लगाता है और अपनी दाई ऊँगली से ढकेलता है। काङ चक्कर काटता हुआ जाता है और लम्था काङखुल में रखे लक्ष्य को मारता है। लम्था मारने के लिए दूसरे काङ को लम्था काङखुल में खड़ा कर लक्ष्यस्वरूप रखा जाता है। काङ के लक्ष्य को मारते समय लक्ष्य स्वरूप काङ का मुँह ऊपर होकर गिरना चाहिए, नहीं तो गोल नहीं माना जाता। यदि काङ लक्ष्यस्वरूप काङ को मारने के पश्चात सीमारेखा पार कर जाएगा तो भी गोल नहीं माना जाएगा। इसको "काङशि" कहते हैं। काङशि का अर्थ होता है मरा हुआ गोल। इस मरे गोल को जिन्दा करने के लिए दूसरे खिलाड़ी को लम्था मारना होगा। किन्तु दूसरे खिलाड़ी द्वारा लक्ष्य को मारे जाने पर भी गोल नहीं माना जाएगा। खेल मैदान के बीचमें जाकर लगभग १२ इंच की दूरी से बगल से फिर लम्था मारना होगा। इसे "मरक चङवा" कहते हैं। मरक चङवा का अर्थ है बीच में जाना। बीचमें जाकर लक्ष्य को मारते समय काङ दूसरे लक्ष्यस्वरूप काङ

को बगल की तरफ से धीरे से गिराता है ऐसा करते समय काङ को लम्था काङखुल पार करके नहीं जाना चाहिए। इस स्थिति में एक गोल माना जाता है। अगर काङ लम्था काङखुल पार कर जाता है अथवा निशाना चूक जाता है तो गोल नहीं माना जाता।

जब तक खिलाड़ी लक्ष्य को मारता रहेगा तब तक जिन्दा माना जाता है। जब वह लक्ष्य को मार नहीं सकेगा तब वह हट कर अपनी जगह बैठ जाता है। पहले दल के सभी खिलाड़ियों के हट जाने के बाद दूसरे दल के खिलाड़ी खेलना शुरू करते हैं। यह खेल पुरुष भी खेलते हैं और महिलाएँ भी खेलती हैं तथा पुरुष और महिलाएँ मिलकर भी खेलते हैं।

## हियाङ् तान्नबा--

"हियाङ् तान्नब" नौका दौड़ प्रतियोगिता का एक खेल है। "हियाङ्" सामासिक शब्द है "हि" और "याङ्बा"। "हि" का अर्थ है नौका और "याङ्बा" का अर्थ है तेजगति। "तान्नबा" का अर्थ है प्रतियोगिता। यह भी मणिपुर का एक पारम्परीण खेल है।

इस खेल में दो लम्बी नौकाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक नौका में सत्रह-सत्रह खिलाड़ी होते हैं। नौका के आगे का सिरा जिसे "हिरू" या "हिरूबाक" कहा जाता है, वहाँ प्रत्येक दल का अगुआ हाथ में डाँड़ लेकर दायाँ पैर आगे करके खड़ा रहता है। उन्हें "तेङ्माइ लेप्पा" कहा जाता है। वे विशेष प्रकार की वेश-भूषा धारण करते हैं। एक खिलाड़ी अगुआ के पीछे खड़ा रहता है। वह भी विशेष वेश-भूषा पहनता है। वह अगुआ की देखभाल करता रहता है और अक्सर उस के हाथ अगुआ की

कमर को पकड़े हुए रहते हैं। वे दोनों नौका चलाने में भाग नहीं लेते। नौका के पीछेवाला सिरा, जिसे "हिनाओ" कहा जाता है, वहाँ एक खिलाड़ी बैठा रहता है। उसे "हिनाओ शाबा" कहते हैं। वह भी विशेष प्रकार की वेश-भूषा पहनता है। दौड़ प्रतियोगिता के दौरान नौका का पूरा नियन्त्रण उसके हाथ में रहता है। अन्य खिलाड़ी, जिसे "हिरोइ" कहा जाता है, घुटने तक धोती पहनते हैं और सिर पर एक-एक पगड़ी रखते हैं। वे हाथ में डाँड़ लेकर खड़े होकर नौका को खेते हैं।

हियाङ का खेल नदी जैसे एक बड़े और लम्बी नाले में होता है, जिसे मणिपुरी में "थाङ्ङपात" कहा जाता है। नाले के दोनों किनारों पर एक-एक विश्रामस्थान होता है, जिसे "हिगाशङ्" कहा जाता है, जहाँ दोनों दल के अगुआ अपने अपने सहयोगी खिलाड़ियों एवं समर्थकों के साथ बैठते हैं। वे अपने-अपने घर से यहाँ तक खुली पालकी पर बैठ कर आते हैं। नाले का एक सिरा, जहाँ इस दौड़ प्रतियोगिता का समापन स्थल होता है, वहाँ श्रीगोविन्दजी का विग्रह या राजा विराजमान रहते हैं। खेल शुरू होने से पहले सभी खिलाड़ी अपनी अपनी नौका में उतरते हैं और नौका को चलाकर देखते हैं कि प्रतियोगिता के दौरान कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। इसे "हिदम्बा" कहते हैं। इसके पश्चात अगुआ नौका में उतरते हैं और नौका चलाकर श्रीगोविन्दजी के विग्रह या राजा के दर्शन करने जाते हैं। दर्शन के समय फल-फूल आदि अर्पित किया जाता है। इस के पश्चात दोनों दल नौका को नाले के दूसरे सिरे तक ले जाते हैं, जो इस नौका दौड़ का प्रस्थान बिन्दु है। प्रतियोगिता का प्रारम्भ शंख बजा कर होता है। शंख की आवाज सुनते ही खिलाड़ी नौका खेना शुरू करते हैं। वे नौका को तेज चलाने की भरसक कोशिश करके

डाँड़ चलाते हैं। नौका के पीछेवाले सिरे पर बैठा हिनाओशाबा नौका को अपने नियन्त्रण में रखता है। यदि वह कुशल खिलाड़ी है तो अपने दल की नौका दूसरे की नौका से टकरा कर उसे आगे बढ़ने नहीं देता और अपने दल की नौका को आगे बढ़ा देता है। इस स्थिति में दोनों दलों के समर्थक ( जो प्रतियोगिता देखने आते हैं ) नाले में कूद पड़ते हैं और पीछे से नाव को ढकेलते हैं। कभी कोई समर्थक दूसरे की नौका को पकड़ कर तेज चलने से रोक लेता है। कभी कभी नाव डूब भी जाती है।

इस प्रतियोगिता के लिए जहाँ समापन स्थल होता है, वहाँ नाले की चौड़ाई के बराबर एक रस्सी फैला रखी जाती है। जब एक दल की नाव उस रस्सी तक पहले पहुँचती है तब उसका अगुआ डाँड़ को ऊँचा उठा कर यह बताता है कि जीत उसके दल की हुई है। बाद में—"हिरूबाक" पर जहाँ वह पहले से खड़ा था, वहाँ से श्रीगोविन्दजी या राजा को दण्डवत् प्रणाम करता है। दूसरे दल की नौका भी जब उस रस्सी तक पहुँच जाती है तब उसका अगुआ डाँड़ को ऊँचा उठाकर यह बताता है कि उसका दल भी मंजिल तक पहुँच गया है। वह भी श्रीगोविन्द जी या राजा को दण्डवत् प्रणाम करता है। इसके पश्चात दोनों दल अपने अपने विश्रामस्थान पर लौट जाते हैं और विश्राम करते हैं। विश्राम करते समय अगुआ के लोग खाने-पीने का सामान अपने सहयोगी खिलाडियों एवं समर्थकों को बाँट कर खिलाते हैं। कुछ देर तक विश्राम करने के बाद फिर दुबारा नौका दौड़ प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार प्रतियोगिता सिर्फ दो बार ही होती है। दूसरी बार की प्रतियोगिता में जीत उस दल की हो सकती है, जो पहली बार में हार चुका है, फिर भी जीत का अधिक महत्व पहले जीतनेवाले का ही होता है।
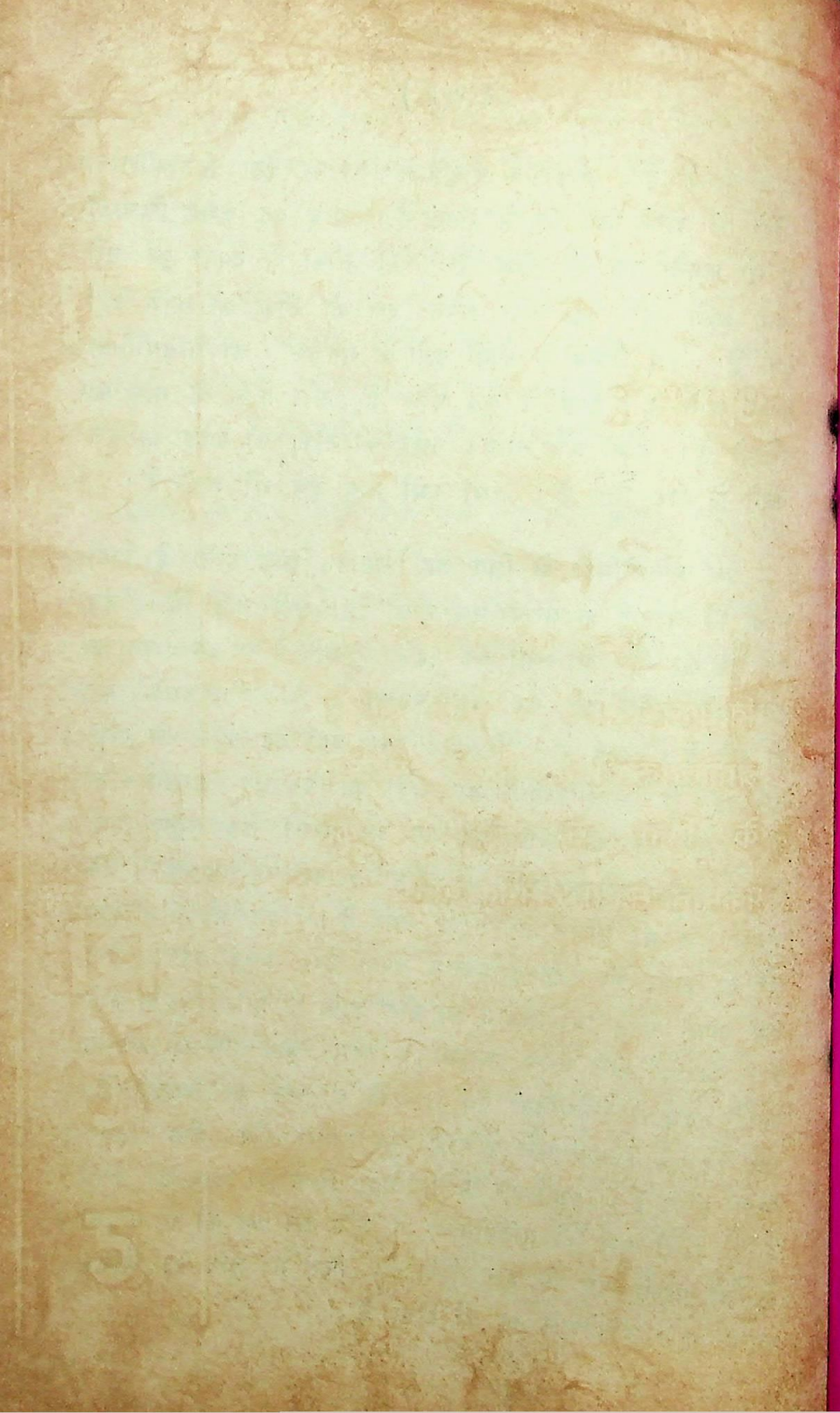
प्र
चा
र
प
रि
शि
ष्
ट

## आभार :

हिन्दी परिषद् उन समस्त विज्ञापन-दाताओं के प्रति आभार ज्ञापित करती है, जिनके सहयोग के बिना इस सन्दर्भ-ग्रन्थ का प्रकाशन सर्वथा असंभव था।

कुछ शब्द चीखते हैं
कुछ कपड़े उतार कर
घुस जाते हैं इतिहास में
कुछ हो जाते हैं खामोश

( मंगलेश डबराल )

---

शब्दों का इतिहास जानें, इससे हमार समाज बनता है।

---

मैं पहला पत्थर मन्दिर का
अनजाना पथ जान रहा हूँ
गड़ूँ नींव में अपने कन्धों—
पर मन्दिर अनुमान रहा हूँ
(माखनलाल चतुर्वेदी)

हिन्दी-परिषद् राष्ट्रीय-भावना का ऐसा ही प्रसार करे—

"वह गुलाम, जो न केवल स्वतन्त्रता के लिए चेष्टा करने से दूर भागता हो, बल्कि अपनी गुलामी को उचित ठहराता हो— वह एक कमीना, चाटुकार, बर्बर जीव है, जिसके प्रति रोष, तिरस्कार और क्षोभ घृणा की भावना पैदा होना सर्वथा उचित है।" (वी० आई० लेनिन)

ये मेघ साहसिक सैलानी
ये तरल वाष्प से लदे हुए
द्रुत साँसों से लालसा भरे
ये ढीठ समीरण के झोंके

( अज्ञेय )

---

नया लक्ष्य हो
नयी सृष्टि हो
आसमान के तारों को भी
बेधें तीर हमारे
इस धरती के वासी हम
क्यों रहे स्वर्ग से हारे
नया लक्ष्य हो
नयी सृष्टि हो

( जगदीश गुप्त )

---

---

मैं जो कुछ भी हूँ
मुझे गर्व है,
मुझे गर्व है
जो कुछ मैंने किया जीवन में
मेरा रक्त गिरेगा
जैसे कि मेरी धरती पर वर्षा
मैं जाता हूँ अपनी कोठरी
मुक्ति की दिशा में
मेरे पास है मात्र मेरा जीवन
मैं वह अर्पित करता हूँ मुक्ति को

(बेंजामिन मोलाइस)

भगवान महावीर का क्रान्तिकारी चिन्तन बेंजामिन मोलाइस तक यात्रा करते करते आग में ढल गया है। आग के ऐसे ही अक्षरों की साधना हिन्दी-परिषद् भी करे, इसी कामना के साथ—